आधुनिक विज्ञान में जातीय प्रश्न

जातिगत विभिन्नताओं का महत्व

लेखक

जी० एम० मोरांट

डा० आफ् साइस लदन

सयुक्त राष्ट्र की शिक्षा, विज्ञान और सस्कृति संस्था के सह-प्रबन्ध से भारत के राष्ट्रीय कमीशन के तत्त्वावधान मे भारत मे प्रकाशित
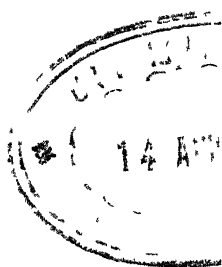
ओरियन्ट लौंगमन्स

बम्बई कलकत्ता नई दिल्ली मद्रास

ओरियन्ट लौंगमन्स प्राइवेट लिमिटेड
१७ चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता १३
निकोल रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई १
३६ए माउन्ट रोड, मद्रास २
२४।१ केन्सन हाउस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
मेन गनफाउन्ड्री रोड, हैदराबाद
१७ नाजिमुद्दीन रोड, ढाका

लौंगमन्स, ग्रीन एण्ड कम्पनी लिमिटेड
६ और ७ क्लिफोर्ड स्ट्रीट, लंदन डब्ल्यू १
एवं
न्यूयार्क, टोरंटो, केप टाउन तथा मेलबोर्न

सयुक्त राष्ट्र की शिक्षा, विज्ञान
और सस्कृति संस्था, पेरिस द्वारा
अग्रेजी सस्करण प्रकाशित

हिन्दी सस्करण (प्रथम प्रकाशन) १९५७

मुद्रक : ज्ञानेन्द्र शर्मा, जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
प्राइवेट लि०, ३६ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता ७

विषय-सूची

प्रस्तावना

मानवता अवश्य ही सदैव किसी-न-किसी प्रकार के समूहो मे बँटकर रही होगी। इन समूहो का रूप कभी किसी समय मे एक परिवार का हो सकता है या गिनती के कुछ परिवारो के एक एक कबीलो का था। इधर आधुनिक स्वरूप उनका वर्तमान समय के बड़े-बडे राष्ट्र है। लोगो मे समूह या वर्ग के व्यक्तियों के प्रति और दूसरे वर्गों के व्यक्तियो के प्रति सबन्धो के विषय मे जो मनोभाव रहते है उनका जरूर गहरा सामाजिक और जैविक प्रभाव पड़ता रहा होगा। कहा जाता है कि इस प्रकार के मनोभाव मानव प्रकृति में बद्धमूल है और अकसर दो रूप मे सामने आते है—नाते रिश्तेदारो और पास-पडोसियो के प्रति व्यवहार मे विशेष सद्भाव के रूप मे तथा अनजान अपरिचितो के प्रति विशेष वैमनस्य के रूप मे। इस प्रकार के व्यवहार प्रकृतिगत हो या न हो लेकिन यह सच है कि मानव समाज के इतिहास के निर्माण मे विभिन्न समुदायों के आपसी सम्बन्धो का बहुत बड़ा हाथ रहा होगा।

विभिन्न वर्गों के लोगो मे यह जो विभिन्नताएँ है, इसकी साहित्यिक चर्चा का सूत्र हमे प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है और आज भी यह एक महत्व का विषय बना हुआ है। यह चर्चा अनेक रूप मे चली लेकिन इसका विषय हमेशा रहा—मानव वर्गों की विभिन्नताओ का स्वरूप और उनके कारणो के सिद्धान्त। प्रत्यक्ष दिखलाई देनेवाली विभिन्नता कहाँ तक मनुष्य के मूलगत गुण धर्मो के कारण है और कहाँ तक इसका कारण जीवन को प्रभावित करनेवाली बाह्य परिस्थितियाँ हो सकती है? इस समस्या पर पिछले सौ साल में प्रचुर वैज्ञानिक गवेषण हुआ है, जिसमे बहुत से नये प्रमाण एकत्र किये गये और समस्या पर नये-नये ढगो से विचार किया गया। लेकिन अभी तक इसका कोई अन्तिम हल नही मिल पाया है।

इस बारे मे लोकमत अभी भी इतना अस्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए जातीयता के ऐसे सिद्धान्तो का प्रचार करके जिनके सत्यासत्य को आसानी से प्रमाणित न किया जा सकता हो उसे प्रभावित कर सकता है। अब तक यह अवसर है कि लोग जो विश्वास करना चाहते है उससे मिलती बात कहे तो वह सिद्धान्त सर्वमान्य सा हो जाए। यह विषय चूँकि सभी लोगो से सम्बन्धित है इसलिए ऐसी आशा नही की जा सकती कि इसकी चर्चा मे, वह सभा मंच पर

हो या अध्ययन कक्ष, लोग अपनी पूर्व धारणाओ से मुक्त होकर भाग ले सकेगे। वर्ग विभिन्नताओ के बारे मे शास्त्रीय कही जानेवाली सारी खोज को संयत और भाव निष्पक्ष समझना भूल होगी। तरह-तरह के और भिन्न-भिन्न प्रकार स्तर की प्रामाणिकता वाले प्रमाणो के सग्रह का निचोड निकालते समय उसमे निजी रुझान का पुट आ जाना स्वाभाविक है। लेकिन फिर भी इस समस्या पर शास्त्रीय गवेषणा करनेवाले सब विद्वानो मे कुछ अशो मे मतैक्य है। उनका प्रस्ताव है कि इस समस्या पर एक खास प्रणाली से विचार किया जाये। उसी प्रणाली के अनुसार कुछ उपयुक्त ढग निकाले गये है जिन पर चलने से कुछ ऐसे परिणाम मिले है जिनकी प्रामाणिकता असदिग्ध है। फिर भी इस शास्त्रीय प्रणाली से सम्बन्धित विचारको को छोड़ कर आम जनता मे इसका बहुत कम आदर हुआ है।

जिन मनोवैज्ञानिको ने जातिगत स्वभाव की विभिन्नताओ पर गवेषणा की है, प्रोफेसर लिनबर्ग ने अपनी 'जातियाँ और मनोविज्ञान' नामक पुस्तक मे उनकी गवेषणा के ढगो पर विचार किया है तथा प्रमाणो और निष्कर्षों का सार दिया है। उसका विषय भी वही है जिस पर दो हजार वर्ष से साहित्यिक चर्चा होती चली आई है। पुस्तिका के बाद के परिच्छेदो मे इस प्रकार के साहित्य की चर्चा की गई है और यह दिखाया गया है कि इसमें अन्तिम निर्णयो तक क्यो नही पहुँचा जा सका। और क्यो इस समस्या पर बिल्कुल नये ढग से विचार करने की आवश्यकता अनुभव की गई।

साधारणतया शरीर और मन मे बहुत बडा, लेकिन कुछ-कुछ बनावटी-सा भेद किया जाता है। मानव-शास्त्री विभिन्न वर्गों के शारीरिक गुणो की सैद्धान्तिक खोज मे लगे हुए हैं और उनका लक्ष्य इस खोज मे प्राप्त प्रमाणो के आधार पर जातिगत इतिहास या वश परम्परा की अपेक्षा में व्याख्या करना है। इसीके समानान्तर एक ओर तो शारीरिक लक्षणो मे वर्गगत विभिन्नताओ पर और दूसरी ओर मानसिक लक्षणो मे वर्गगत विभिन्नताओ पर खोज चल रही है। इनमे दूसरे विषय की अपेक्षा पहले मे अधिक खोज हो चुकी है जिसका एक प्रमुख कारण शायद यह है कि इसमे नियमित ढग से खोज करना अपेक्षाकृत आसान है। ऐसी परिस्थितियो मे सम्भव है कि शारीरिक बनावट मे वर्गगत विभिन्नताओ के विषय में हुई खोज का सार तैयार करना लाभदायक हो सके, क्योकि इस खोज मे जो ढग अपनाये गये है और जो आम निष्कर्ष निकले है उनके अध्ययन से शायद विभिन्न वर्गो की मानसिक विभिन्नताओ के बारे मे खोज करने के मार्ग ढूँढने मे आसानी हो सके। समस्या के इन दोनो पहलुओ मे जो आपसी सम्बन्ध है उस पर विचार करना ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

इन बातो पर विचार करते समय ऐसा कोई स्पष्ट भेद नही किया जा सकता कि कौन से प्रश्न केवल सैद्धान्तिक चर्चा के लिये है और कौन से व्यावहारिक महत्व के हैं। इनके बारे में स्थिर मत देना लोगो के आपसी व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। एक दृष्टि से तो शारीरिक बनावट की जातिगत विभिन्नताओं का कोई विशेष व्यावहारिक महत्व नही है। कारण बुद्धिवादी जगत मे केवल चेहरे-मोहरे का अन्तर लोगो के आपसी सम्बन्ध और व्यवहार को प्रभावित करने के लिए काफी नही है। शारीरिक बनावट की विभिन्नताओ का जो कुछ व्यावहारिक महत्व है वह केवल इसलिए कि इनसे विभिन्न वर्गों के लोगों मे एक स्पष्ट अन्तर दिखाई पडने लगता है। यह बात भी उन थोडे से शारीरिक लक्षणों के बारे मे है जिनके आधार पर मानव शास्त्री जातिगत वर्गीकरण करते है। इनमे सबसे प्रमुख है रग, जिसके कारण विभिन्न वर्गों के लोगो में स्पष्ट अन्तर दीखने लगता है। बालो और आँखो का रग, बालों की बनावट और चेहरे की गठन भी महत्व के हैं। यदि विभिन्न वर्गों के लोगो के रंग मे कोई अन्तर न होता तो आज मानव इतिहास का रूप ही दूसरा होता।

शेष सब शारीरिक लक्षणो की अपेक्षा रंग को विभिन्न वर्गों मे सबसे अधिक अन्तर के लिए उत्तरदायी समझा जाता है। जातिगत विभिन्नता जतानेवाले बाकी दूसरे शारीरिक लक्षणो से इसकी तुलना में विभिन्न वर्गों का अन्तर कही कम प्रकट होता है। और ऐसे अन्य लक्षण तो बिरले ही है जो एक वर्ग के सारे लोगों को दूसरे वर्ग के सारे लोगो से पृथक् कर सके। लोगो का रग भिन्न होने से ही जातिगत विभिन्नता का एक गलत पहलू सामने आता है और इसी पहलू के कारण लोगो ने धारणा बनाई होगी कि अलग-अलग रग वाले लोगो मे मानसिक विभिन्नताएँ भी होती है। चाहे झूठी हो या सच्ची, पर विभिन्नताएँ व्यावहारिक महत्व का प्रश्न बनी हुई है। लेकिन इनकी जाँच करना एक जटिल समस्या है और इनके बारे मे सैद्धान्तिक खोज अभी प्रारम्भिक अवस्था में है।

मानव समूहों की विभिन्नताओं का साहित्यिक विवेचन

स्काटलैंड के दार्शनिक श्री डेविड ह्यूम का एक निबन्ध सन् १७४१ मे प्रकाशित हुआ था जिसका पहला वाक्य था, 'असस्कृत व्यक्ति सभी राष्ट्रीय लक्षणो को लेकर ज्यादती कर सकते है। और एक बार यह धारणा बना लेने पर कि अमुक जाति दगाबाज, या कायर या मूर्ख है वे फिर उसमे किसी अपवाद को स्वीकार नही करते और उस जाति के हर आदमी को इस लाछन के नीचे गिनते है।' लेखक ने आगे इस प्रश्न पर विचार किया है कि राष्ट्रीय लक्षण नैतिक यानी शैक्षिक या सामाजिक परिस्थितियो से बनता है या जलवायु और प्राकृतिक स्थिति जैसे भौतिक कारणो से। लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि मनुष्य की अनुकरण करने की प्रवृत्ति के कारण चरित्र निर्माण मे नैतिक कारणो का सर्वाधिक हाथ रहता है और भौतिक कारणो का नगण्य।' यदि हम भू-मण्डल पर दृष्टि डाले या इतिहास के पन्ने पलटे तो हमे हर जगह लोगो के आचरण में अनुकरण या एक-रूपता के प्रभाव के चिह्न दिखाई देगे, ऋतु या जलवायु के प्रभाव के नही।

इसके पक्ष मे कई तरह के तर्क दिये गये है। उदाहरण के लिए एक तर्क यह दिया गया है कि इतिहास मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलेगे जब एक ही जाति का विभिन्न कालो मे भिन्न-भिन्न चरित्र रहा हो। लेखक ने एक टिप्पणी मे दूसरी ही बात कही है। उन्होने लिखा है · "मुझे ऐसा लगता है कि नीग्रो जाति के लोग श्वेत जातियो की अपेक्षा हीन होते है। इस रग की कोई जाति शायद ही कभी सभ्य रही हो और शायद इस रंग का कोई बिरला व्यक्ति ही अपने शारीरिक या मानसिक गुणो के लिए प्रसिद्ध हुआ हो।" आज इस तर्क के खण्डन में अनेक उदाहरण दिये जा सकते है।

पिछले दो हजार से भी अधिक वर्ष से इस विषय पर जिस ढग का विवेचन हो रहा है श्री ह्यूम साहब का निबन्ध उसका एक खास उदाहरण है। प्राचीन यूनानियो को इस विवेचन का प्रणेता कहा जा सकता है। लेकिन तब से अब तक इसका कोई ऐसा निष्कर्ष नही निकल सका जो सर्वसाधारण के लिए सन्तोषप्रद हो। सर्वसाधारण को तो क्या यदि कोई ऐसा निष्कर्ष भी निकल पाता जिससे समझदार व्यक्तियो को ही सन्तोष हो पाता तो भी यूनेस्को को इस मामले को हाथ मे लेने की आवश्यकता न होती। इस विवेचन मे भाग लेने वाले विचारको ने अपने-अपने काल में प्रचलित विचारधाराओ और उपलब्ध ज्ञान के अनुसार

इसे विभिन्न रूपो मे चलाया और भिन्न-भिन्न ढग के प्रमाण दिये। और हर काल मे समस्या के दो पहलू रहे है।

मानव प्रकृति और मानव व्यवहार दोनो ही अत्यधिक जटिल है, जातियो की विभिन्नताओ के महत्व के मूल्याकन की समस्या एक ओर तो मानव प्रकृति के मूल से सम्बन्धित है और दूसरी ओर व्यक्ति और समाज के व्यवहार की जटिलताओ से। ऐसी स्थिति मे इस समस्या का विवेचन सुगम होने की आशा नही की जा सकती। इससे किसी-न-किसी रूप मे सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रमाण मिलते है। इन प्रमाणो को मोटे तौर पर दो श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है, एक साहित्यिक और दूसरे वैज्ञानिक।

शुरू मे इस विषय पर जो विवेचन हुआ है वह मुख्यत साहित्यिक श्रेणी का है। उसमे भाग लेनेवाले विचारको के सामने अपने प्रमाण जुटाने के लिए ससार की सभी जातियो और इतिहास के सभी कालो से सम्बन्धित उपलब्ध ज्ञान का भण्डार उपस्थित था। लेखक विशेष को उसी भण्डार मे से अपने तर्कों की पुष्टि के लिए उपयुक्त प्रमाण चुनने होते और हर प्रकार के प्रमाणो से कोई ऐसा आम सिद्धान्त प्रतिपादित हो ही जाता जो अनेक तथ्यो पर आधारित प्रतीत होता हो। दूसरे लेखक के लिए अपने मत को विभिन्न तर्कों के सहारे बनाने और उसकी पुष्टि के लिए दूसरे प्रकार के प्रमाण जुटाने का मार्ग प्रशस्त था। एक ही प्रश्न पर विचार करनेवाले दो लेखक एक ही श्रेणी के तथ्यो के आधार पर—जिनमे से कुछ अपुष्ट और भ्रामक भी हो सकते है—विभिन्न निष्कर्ष निकाल सकते है। व्याख्या करने और विशिष्ट पहलुओ पर जोर देने के ढग मे अन्तर होने की सम्भावना बहुत अधिक है। प्रमाणो का विभिन्न रूपो मे उपयोग किया जा सकता है और एक दूसरे से बिल्कुल उलटे निष्कर्षो के पक्ष मे विश्वसनीय तर्क पेश किये जा सकते है। समस्या का अन्तिम हल कोई नही निकाल सका और इसलिए हमेशा चर्चा को आगे चलाने का मार्ग खुला रहा। ऐसा कोई भी वजनदार तर्क नही दिया जा सका जो इस विवाद का अन्त कर सकता। इसके विपरीत ऐसे गौण तर्कों की भरमार रही जिनका दोनो पक्ष अपनी अपनी रुचि के अनुसार अपने पक्ष की पुष्टि मे इस्तेमाल कर सके। आज तक अनिर्णीत बने रहना भी इस समस्या की एक खास बात है। इस विवेचन का इतने दिनो तक जारी रखना और रहना और आज भी इतना महत्वपूर्ण होना इसकी महत्ता का प्रमाण है।

मनुष्य की प्रकृति और इतिहास के बारे मे विस्तृत जानकारी उपलब्ध होने के कारण इस बहस मे उपयोग किये जानेवाले परिभाषिक शब्दो मे आज कल कुछ सशोधन हो गया है, लेकिन विभिन्न जातियों की विशेषताओ की तुलना अब भी उसी पुराने साहित्यिक ढर्रे पर की जाती है। कुछ लेखक आज भी जो प्रमाण

की सफाई की भूमिका के रूप मे इस पहलू पर विचार करना उचित होगा कि साहित्यिक विवेचन से समस्या का कोई हल क्यो नही निकल पाया ?

सक्षेप मे जातिगत विभिन्नताओ के साहित्यिक विवेचन से इसलिए कोई निष्कर्ष नही निकल पाया क्योकि—(क) सामान्यत समस्या की स्पष्ट व्याख्या नही की गई। (ख) मानव वर्गो मे परिलक्षित विभिन्नताएँ पैदा करनेवाले कारणो के सापेक्ष प्रभाव को आँकने की कोई प्रणाली नही थी। (ग) व्यक्तिगत गुणो मे वर्णित इन विभिन्नताओ की ऐसी व्याख्या नही हो पाई थी जो ठीक-ठीक तुलना करने मे उपयोगी हो। (घ) मानव वर्गों की तुलना करने की व्यवस्थित प्रणाली नही थी। यह एक तरह से विवेचन के उस ढग की, जिसमे बडे-बडे विचारको और लेखको ने भाग लिया बहुत ही कटु आलोचना है। और यह भी आशा नही की जा सकती कि इसमे ऐसे सुधार आसानी से किये जा सकेंगे जिनके द्वारा समस्या का हल निकलने की अधिक आशा हो। आशा यह करनी चाहिए कि वैज्ञानिक तरीको से समस्या के ठीक-ठीक और क्रमबद्ध अध्ययन की प्रणाली निकल आयेगी।

समस्या के साहित्यिक विवेचन की कमजोरियो पर और विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। यह तो एक साधारण सी बात है जब दो बिल्कुल भिन्न सस्कृति की जातियो मे तुलना की जायेगी तो उनके मानसिक गठन और व्यवहार मे अन्तर होगा। हाँ, यह कहना मुश्किल है और सिर्फ गोल-मोल शब्दो मे ही कहा जा सकता है कि वास्तव मे वह अन्तर कैसा होता है। उदाहरण के लिए आस्ट्रेलिया के सौ आदिम निवासी, सौ चीनी और सौ अंग्रेजो को लीजिए। इन सबसे यह आशा नही की जा सकती कि एक ही परिस्थिति मे सब की एक ही सी प्रतिक्रिया होगी। ऐसी किसी परिस्थिति की कल्पना करना भी मुश्किल है जिसमे तीनो वर्गों की एक ही-सी प्रतिक्रिया हो। समस्या इस बात का पता लगाने की है कि विभिन्न वर्गों के लोगो के व्यवहार मे अन्तर क्यो होता है या यो कहे कि उनके लक्षण पृथक्-पृथक् क्यो होते हैं ? हो सकता है कि उनमे 'प्राकृतिक' विभिन्नताएँ हो, या उनके मानसिक गठन की विभिन्नता का कारण उनके जीवन की परिस्थितियाँ हो, या इन दोनो प्रकार की विभिन्नताओ की अन्तर-क्रिया के कारण ही यह अन्तर पैदा हुआ हो, जो दृष्टिगोचर हो रहा है। अगर इस बात का निर्णय हो जाय कि जीवन की वाह्य परिस्थितियो का काफी प्रभाव पडता है तब फिर इस प्रकार की भिन्न-भिन्न परिस्थियो के चाहे वे सामाजिक हो या भौतिक, सापेक्ष प्रभाव को आँकना भी समस्या का एक अग हो जाता है।

पहला प्रश्न एक ओर तो 'प्राकृतिक' या 'जन्मजात' गठन और दूसरी ओर सामाजिक या भौतिक परिस्थितियो के सापेक्ष प्रभावो का पता लगाने या उनके आँकने का है। फिलहाल हम इस बात को जाने दे कि प्राकृतिक, जन्मजात अथवा

अन्य ऐसे पारिभाषिक शब्दो की किस प्रकार व्याख्या होगी। जातिगत विभिन्नताओं के साहित्यिक विवेचन मे इस प्राथमिक प्रश्न को अक्सर नज़रअन्दाज कर दिया गया है या यदि विचार भी किया गया है तो सरसरे तौर पर या पूर्व निश्चित धारणाओ के अनुसार। उदाहरण के लिए ह्यूम साहब के निबन्धो मे जिसका पहले भी हवाला दिया गया है इस सवाल पर विचार किया गया है कि 'जातिगत लक्षण' नैतिक कारणो से बनते है या भौतिक कारणो से। जिन जातियो मे तुलना की जा रही है उनमे 'प्राकृतिक' विभिन्नता होने की सम्भावना है। इसका सिर्फ बदकिस्मत टिप्पणी में जिक्र है। लेखक को लगता है कि नीग्रो जाति श्वेत जाति की अपेक्षा हीन होती है और अपने इस विश्वास की पुष्टि मे उन्होने यह तर्क दिया है कि नीग्रो जाति के सुसस्कृत होने या उनमे से किसी व्यक्ति के महान् बनने के उदाहरण नही मिलते। यदि जीवन मे सफलता को ही कसौटी माना जाय तो एक जाति दूसरी से स्वभावत उच्च है या नही इसकी जॉच करते समय उन दोनो जातियो को मिलनेवाले अवसरो की समानता का किस प्रकार हिसाब लगाया जायगा? सच तो यह है कि ह्यूम साहब पहले प्रश्न को बिल्कुल टाल गये और यही हाल अधिकाश उन सब विचारको का है जो कुछ समय पहले तक इस विवेचन मे भाग लेते रहे है।

जातीयता विषयक आधुनिक साहित्य मे भी इस पूर्व निश्चित धारणा का पूरा बोलबाला है। यद्यपि इस पक्ष के सब तर्क साहित्यिक ढग के थे, लेकिन उनमे वैज्ञानिक शब्दावली का भी दिल खोल कर प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक और जातिगत विभिन्नताओ को सर्वोपरि और अपरिवर्तनशील माना गया था। इस सिद्धान्त का जो कुछ खण्डन था वह भी अशत साहित्यिक ढग के लेखो के रूप मे था जिनमें यत्र-तत्र वैज्ञानिक तथ्यो और सिद्धान्तो का पुट होता था। विवाद मे भाग लेनेवाले दोनो पक्षो की प्रवृत्ति चरम मार्ग अपनाने की ही रहती और यदि एक पक्ष कोई स्थिति स्वीकार करता तो दूसरा तत्काल उसका उत्तर अस्वीकृति मे देता। ऐसी हालत मे निष्पक्ष होना बडा कठिन था। तो भी विरोधी दल के कुछ समझदार व्यक्तियो ने अपने समर्थको को कुछ सयत करने का प्रयास किया। फ्रैडरिक हर्टज़ साहब ने अपनी 'जातिभेद और सभ्यता' नाम की पुस्तक के अग्रेजी सस्करण की प्रस्तावना मे जो १९२८ मे प्रकाशित हुई थी लिखा—'इस पुस्तक के बहुत से आलोचको का विश्वास है कि मै इस बात को स्वीकार नही करता कि जाति और स्वभाव मे कोई पारस्परिक सम्बन्ध होता है। इसलिए मै इस बात को एक बार साफ कर देना चाहता हूँ कि मै पूर्ण रूप से सभी जातियो के मानसिक गठन की क्षमता को स्वीकार करने का हठ नही करता। लेकिन इसके विपक्ष मे भी दावे के साथ कुछ नही कहा जा सकता है। इतिहास

और जाति-विज्ञान तो यही बताता प्रतीत होता है कि जातियो द्वारा निर्मित सामाजिक और सास्कृतिक परिस्थितियो के अनुकूल डालने की क्षमता जन्मजात गुणो के कारण सीमित नही होती। परन्तु सम्भवत कुछ जातियो मे कम-से-कम स्वभाव की भिन्नता होती है। और थोड़े से अन्तर के भी बडे-बडे परिणाम निकलते है। फिर भी वे सिद्धान्त जो सारी विभिन्नताओ का आधार 'स्वभाव' को ही मानते है, पुराने पड चुके है।"

साहित्यिक विवेचन हो या किसी और प्रकार का, लेकिन विभिन्न मानव-वर्गों की तुलना उनकी विशेषताओ को लेकर ही करनी होगी। जो विशेषताएँ दुनियाँ की सभी जातियो मे एक सी है, जाहिर है कि उन पर विचार करना बेमानी है और जिन पर विचार किया जाय उनमे कुछ-न-कुछ अन्तर होना चाहिए ताकि विशेषताओ के प्रक्रम से विभिन्न व्यक्तियो मे अन्तर किया जा सके। सामान्यत. इस विवेचन मे रोजाना की बोल-चाल और लिखत-पढत के शब्द प्रयोग किये जाते है। जैसे बुद्धिमान या मूर्ख, स्फूर्तिमान या आलसी, प्रसन्न या उदास, साहसी या कायर आदि। ये सब व्यक्तिगत विशेषताएँ है और समस्या है इनके सहारे मानव वर्गो मे तुलना करने की।

साधारण बोल-चाल मे जन-समूहो मे प्राय· तुलना की जाती है, चाहे यह समूह मनुष्य समाज के प्रमुख भाग हो या राष्ट्रीय स्तर के समह हो या देश से सम्बन्ध रखने वाले या अन्य सामाजिक वर्ग जैसे छोटे छोटे समूह हो। इनमें से हर समूह के बारे मे कुछ इस प्रकार बात करने का रिवाज हो गया है मानो वे समूह न हो कर कोई एक व्यक्ति हो। ऐमे प्रयोगो के उदाहरण हमे लगभग सभी समाचार-पत्रो और अनेक राजनीतिक भाषाओ और विवेचनो मे मिल सकते है। शब्दो की किफायतशारी का यह ढग सर्वमान्य सा हो गया है। और साधारण बोल-चाल मे इसकी ओर ध्यान भी नही जाता। लेकिन इससे विचारो के उलझने का खतरा रहता है। इस प्रकार बोलने से हमेशा यह मान होता है कि तुलना किये जानेवाले समूहो में उससे कही अधिक अन्तर मालूम पडता है जितना उनमे विस्तृत खोज के बाद निकलेगा। इसी आशय से श्री ह्यूम ने लिखा था, "असस्कृत लोग जातीय लक्षणो को लेकर जादती कर सकते है।"

इस कथन का क्या आशय है कि श्वेत जातियाँ नीग्रो लोगो की अपेक्षा अधिक स्फूर्तिमान है? क्या इसका अर्थ यह समझा जाए कि सारे श्वेत लोग बराबर स्फूर्तिमान हैं और सारे नीग्रो लोग समान रूप से उनसे कम स्फूर्तिमान हैं। ऐसा अर्थ लगाना प्रकटत मूर्खतापूर्ण है। यदि कथनकर्ता से इतना स्पष्टीकरण माँगा जाए तो शायद वह कहे कि इसमे मेरा आशय यह था कि नीग्रो लोगो की अपेक्षा श्वेत जातियो मे अधिक स्फूर्ति नजर आती है या शायद वह यो कहे कि

श्वेत जातियाँ नीग्रो लोगो की अपेक्षा अधिक स्फूर्तिमान होती है। सवाल पर एक समूह की दृष्टि से विचार करना होगा और उनकी तुलना मे उन्ही शब्दो का प्रयोग हो सकता है, जो दो जाति समूहो की तुलना मे प्रयोग किये जा सके। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि अध्ययन इस बात का करना है कि जिन दो जाति समूहो की तुलना की जा रही है उनमे कोई गुण किन विभिन्न प्रक्रमो मे मिलता है। और यह एक साख्यिकी का विषय बन जाता है। लेकिन अगर यह बात मान ली जाय तो जिन गुणो का अध्ययन करना है, उनकी स्पष्ट परिभाषा तथा उनके प्रक्रमो के विवरण का अभाव सामने आता है। साहित्यिक विवेचन यही रुक जाता है। साहित्यिक चर्चा के साधन वस्तुस्थिति की दुरूहता को सुलझाने में असमर्थ प्रतीत होते है।

साहित्यिक विवेचन के प्रमाण भी इसी प्रकार के है जिनका स्पष्ट विश्लेषण नही किया जा सकता। साहित्यिक विवेचन को भूतकाल के अभिलेखो पर बहुत कुछ निर्भर करना पडता है, क्योकि मनुष्य की प्रकृति का अध्ययन उसके इतिहास के सहारे ही हो सकता है। आज से कुछ साल पहले अभिलेखो का इस प्रकार का कोई क्रमबद्ध सग्रह नही था जिसमे जाति समूहो की विशेषताओ का विवरण दिया हुआ हो। पुराने जमाने की ऐसी विशेषताओ का अनुमान केवल जातियो के जीवन और क्रिया कलाप के विवरणो द्वारा ही लगाया जा सकता है। और उनके विचारो का अनुमान भूतकाल के बचे-खुचे उन अभिलेखों से हो सकता है जो किसी प्रकार कालकवलित होने से बच गए है। लेकिन जब हम किन्ही विशिष्ट जातियो के गुणो को आँकना चाहते है तो इस प्रकार के परोक्ष प्रमाणो से काम नही चल सकता। मान ले, इस बात का निर्णय करना है कि अमुक जाति समूह साहस की दृष्टि से दूसरे जाति समूह से बढ कर था या नही। क्या इसके लिए सिर्फ सैनिक सफलताओ को कसौटी मानना काफी होगा या उन अनेक परिस्थितियो को भी दृष्टि मे रखना होगा जिनके कारण युद्ध मे सफलता मिली और साहस का प्रदर्शन हुआ। प्रमाणो की व्याख्या भिन्न-भिन्न विचारक भिन्न-भिन्न तरीके से कर सकते है। इस बात की सम्भावना अधिक है कि विवेचन एक अनिर्णीत विवाद का रूप धारण कर ले और किसी आखिरी परिणाम तक पहुँचने की आशा भी दिखालाई न पडे।

इस विषय के साहित्यिक विवेचन को किसी भी तरह से परखे लेकिन उसमे ऐसी कमियाँ मिलती है जिनसे यह आशा टूट जाती है कि इस प्रकार के विवेचन से मूल समस्या का कोई अन्तिम हल निकल सकेगा। इस जैसे दुरूह कार्य के लिए यह साधन अधूरे है। आज प्रश्न यह है कि क्या वैज्ञानिक अध्ययन से अच्छे परिणाम निकलने की आशा की जा सकती है।

मानव जातियो की मनोवृत्ति और व्यवहार मे भिन्नता है। सवाल यह है कि इस बात का पता लगाया जाय कि ऐसा क्यो है। जातियॉ की शारीरिक विशेषताओ मे भी स्पष्टत. फर्क है। अत एक समस्या यह भी है कि इन परस्पर विभिन्नताओं का अर्थ जाना जाये। दूसरी समस्या पर इधर कुछ सालो में गहरी खोज की गई है। और विभिन्न कारणो से इस खोज के साधन और परिणाम जातिगत मानसिक भेदो की समस्या की तुलना मे काफी आगे बढे हुए है। जातियों की शारीरिक भिन्नताओ के बारे मे जो कुछ मालूम किया जा चुका है जातियो की मानसिक विभिन्नताओ पर विचार करते समय उसका विस्तृत पुनरावलोकन करने से मदद मिल सकती है। इस पुस्तिका का एक तर्किक आधार यह है कि ऐसा करने से वस्तुस्थित स्पष्ट हो जाती है और इससे यह भी पता चल जाता है कि इस अधिक कठिन जाँच का कार्य श्रेष्ठ रूप से किस प्रकार हो सकता है।

दोनो समस्याओ की व्याख्या ठीक एक ही तरीके से हो सकती है। दोनों सूरतो मे दो मुख्य विचारार्थ विषय हैं। पहला विषय इस बात का निर्णय करना है कि जातिगत विभिन्नताएँ क्या प्रकृतिजन्य है और यदि है तो किस हद तक। दूसरा विषय इस बात का निर्णय करना है कि जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ किस हद तक इन विभिन्नताओ के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार सारी समस्या दो हिस्सो मे बँट जाती है। लेकिन ऊपर इनकी जो सक्षिप्त व्याख्याएँ दी गई है वे इतनी अस्पष्ट है उनसे कोई ठीक अर्थ नही निकलता। इन दोनो मुख्य प्रश्नो पर जातियो की विशेषताओ को सामने रख कर ही विचार किया जा सकता है। कम-से-कम आरम्भ मे यह आवश्यक है कि हम उन विशेषताओ पर भी, जिन पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार हो चुका है, विचार करे। भिन्न-भिन्न विशेषताओ के सम्बन्ध मे स्थिति भी भिन्न-भिन्न हो सकती है। वस्तुतः यह ज्ञात है कि विभिन्न शारीरिक विशेषताओ के लिए स्थितियाँ बहुत ही विभिन्न होती है। मानसिक विशेषताओ के सम्बन्ध मे भी यदि ऐसा ही हो तो आश्चर्य की बात नही। अत प्रश्न का कोई सामान्य समाधान नही हो सकता। एक गुण विशेष या गुणो के कुलत्र को दृष्टिगत रख कर ही कोई समाधान करना सम्भव है। कुछ गुणो से जातियो का एक रूप मे पता चलता है तो दूसरो से दूसरे प्रकार से। यह एक महत्वपूर्ण बात है लेकिन मनोगठन और शरीर गठन के आधार

पर जातियो मे भेद के विषय पर व्यापक सामान्यन करते समय इस बात को भूल जाना बहुत सम्भव है। जब तक उन विशेषताओ को निर्धारित नही किया जायेगा, जिनका उल्लेख ऐसे निष्कर्षो मे आता है तब तक ऐसे निष्कर्ष निरर्थक होगे।

अब तक हमने 'विशेषता' शब्द का प्रयोग किया है क्योकि ऐसा लगता है कि साधारण बोल-चाल मे प्रयुक्त होनेवाले इसी शब्द से इच्छित अर्थ का सर्वोत्तम बोध होता है। लेकिन वैज्ञानिक साहित्य मे अब इसी उद्देश्य के लिए 'लक्षण' शब्द के प्रयोग की परम्परा है। इस अर्थ मे लक्षण का आशय उस विशेषता या गुण से है जो सभी मनुष्यो मे हो और इस चर्चा की रुचि केवल उन लक्षणो मे है जो परिवर्तनीय होते है ताकि उनके भिन्न प्रक्रमो से भिन्न-भिन्न जातियो का अन्तर प्रकट हो सके। बालो का रग एक लक्षण है जिसके भिन्न-भिन्न प्रक्रम हमे भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे मिलते है। कद एक शारीरिक लक्षण है और इसके भिन्न-भिन्न प्रक्रम लम्बाई के विस्तार के मापो से दर्शाये जा सकते है।

लक्षण विभिन्न प्रकार के होते है लेकिन उनके दो वर्गो मे स्थूल सा अन्तर किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के लक्षण भिन्न-भिन्न लोगो मे विभिन्नता की मात्रा को प्रकट करते है और सब स्थितियो मे नही तो अधिकाश मे इस मात्रा को किसी-न-किसी प्रकार अनुमाप द्वारा नापना सम्भव हो सकता है। यदि इस प्रकार मापना सम्भव हो, ऐसे लक्षण को मात्रात्मक कहा जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे लक्षण सतत विभिन्नता प्रकट करते है, परन्तु मात्रात्मक लक्षण सज्ञा उन लक्षणो के लिए भी प्रयोग की जा सकती है जो प्रक्रमात्मक अतर 'जैसे चर्म अथवा बालो का रग' प्रकट करते हो जिसे किसी साधारण अनुभव द्वारा नही मापा जा सकता। दूसरे वर्गवाला कोई लक्षण विशेष एक जाति समुदाय को एक या दो विभिन्न वर्गों मे विभाजित करता है (जैसे रक्त समूह की पद्धति करती है)। अत यह लक्षण असतत विभिन्नता प्रकट करते है। इसके अन्तर्गत वह लक्षण आता है जिसके लिए कहा जा सके कि यह अमुक व्यक्ति मे है और अमुक मे नही।

लक्षणो का वर्गीकरण एक जटिल काम है। परन्तु मानव जातियो की जैविक तुलना के किसी भी सक्षिप्त विवरण मे इन जटिलताओ मे से कुछ का उल्लेख करना ही होगा। एक कठिनाई सामान्य और असामान्य कही जाने-वाली विभिन्नता मे भेद करने के सम्बन्ध मे है। अधिकाश लोगो के चारित्रिक लक्षण यह तथ्य निश्चित करते है जो उस ढग से सक्रिय रहते है जिसे सामान्य कहा जाता है, क्योकि वही प्रामाणिक ढग होता है। परन्तु थोडे से लोग असाधारण परिस्थितियो द्वारा प्रभावित हो सकते है जिसका परिणाम यह होता है कि कोई लक्षण असामान्य होता है। ऐसे लोग प्रायः झट पहचान लिये जाते है क्योकि यह लोग अपनी जाति की साधारण सीमाओ से बाहर जा पड़ते हैं।

उदाहरण स्वरूप कद के लिहाज से जिन लोगो को बौना या दानवाकार कहते है वह अक्सर सभी बडी जातियो मे पाये जाते है। बौनापन रोग-ग्रस्त अवस्था के कारण होता है। यह अवस्था शरीर के विकास काल मे दोषपूर्ण आहार द्वारा हो सकती है। असाधारण लम्बापन भी रोग के कारण होता है। विभिन्न जातियो के लोगो के वर्गो मे कद की तुलना दो प्रकार से हो सकती है, (क) वह लोग जिनकी लम्बाई असामान्य मानी जाती हो। (ख) वह लोग जिनकी लम्बाई सामान्य विभिन्नता की सीमा के भीतर हो। फिर भी प्राय: जातियो मे जैविक प्रभेद के प्रश्न पर सामान्य विस्तार को ही ले कर विचार किया जाता है। और इस विस्तार मे अधिकाश लोग आ जाते है।

सारी समस्या को 'दैहिक और मानसिक दोनो पहलुओ को' अब दूसरे शब्दों मे इस प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है। इस समस्या पर विचार की प्रथम सीढी है परिवर्तनीय लक्षणो का वर्गीकरण जिससे हरेक लक्षण के बारे में निम्नलिखित बाते मालूम हो जाये —

(क) व्यक्तियो मे उसके जो प्रक्रम मिलते है, क्या वे केवल प्रकृति के कारण है। (ख) क्या वे उन परिस्थितियो के कारण है जिनमें व्यक्ति का जीवन व्यतीत होता है, या (ग) क्या लक्षण के प्रक्रम बनाने मे प्रकृति और जीवन की परिस्थितियो, दोनो का हाथ है।

अनेक परिवर्तनीय लक्षणो के बारे मे इस प्रकार के निष्कर्ष निकालने पर दूसरी सीढ यह होगी कि कई उपयुक्त जातियो के व्यक्तियो की अनेक मालाओ के बारे मे अभिलेख एकत्र किये जाये और फिर सब जातियो की विभिन्नताओ की मात्रा और सार्थकता प्रकट करने के उद्देश्य से सूचना के इन कुलको मे तुलना की जा सकती है। यहाँ जिन पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया गया है उनकी व्याख्या करने या उनके स्थान पर अधिक उपयुक्त शब्दो को रखने की आवश्यकता है। लेकिन इस पर विचार करने से पहले यह ध्यान मे रखना चाहिए कि समस्या की नये शब्दो मे व्याख्या करने से समस्या बहुत कुछ बदल कर सुधर गई है। पहली व्याख्या मे समूहो की विभिन्नता का बहुत ही अस्पष्ट शब्दो मे उल्लेख हुआ था और अब लक्षणो पर अलग-अलग विचार करने पर बल दिया जा रहा है। यदि अलग-अलग विचार के बाद अनेक लक्षणो के बारे मे कोई समाधान किया जा सकता है तब निश्चय ही यह सम्भव हो सकेगा कि उन सब को मिला कर एक अधिक निष्कर्ष निकाला जा सके। फिलहाल यदि एक लक्षण के बारे में भी कुछ समस्या हल हो जाय तो कुछ लक्ष्य पूरा होगा और इस सीमित लक्ष्य की प्राप्ति की बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

समस्या की परिभाषा को सरल करने के लिए यह आवश्यक है कि किसी

लक्ष्य को प्रकृतिजन्य कहने से हमारा जो आशय होता है उसे और अधिक सीधे और सरल शब्दो मे कहा जाय, "प्रकृतिजन्य"। इसके लिए आम प्रचलित पर्याय-वाची शब्द है सहजात, अन्तरज और पित्रागत। यह विषय क्षमता से सम्बद्ध है न कि बाहरी प्रकाशन से, हालाँकि भीतरी क्षमता का निर्णय भी वाह्य अभिव्यक्ति द्वारा ही हो सकता है। प्रकृतिजन्य के लिए पारिभाषिक शब्द है जननिक और जातिगत। जनन-विज्ञान पित्रागति सम्बन्धी विज्ञान है और इसके विषय की व्याख्या मे ऐसे पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग आवश्यक है जिन्हे अधिकतर लोग नही समझते। मनुष्यो की जातियो का प्रश्न मानव-शास्त्रियो का विषय है और इस बिषय पर वह जिस प्रकार से विचार करते है उसे अधिक प्रचलित शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है।

जाति का विषय मूलत ऐसा है जिसका सम्बन्ध समूहो से है न कि व्यक्तियो से और विचाराधीन समूहो मे प्रभेद उन समहो के लोगो की वश-परम्परा के आधार पर किया जाता है। यदि मानव जाति इस तरह सगठित होती कि प्रादेशिक जन-समूह काफी काल तक—कह लीजिए पचास या सौ या हजार पीढियो तक—प्राय अलग-अलग इकाइयो मे बँटे रहते, तो जातीय वर्गीकरण की समस्या पर विचार करनेवाले मानव शास्त्रियो का काम कही आसान हो जाता। परस्पर विवाह करनेवाले ऐसे लोगो के समूह को हम जाति कह सकते है। ससार मे इस प्रकार के आदर्श जन-समूह बहुत कम है। परन्तु जन-समुदायो में कई पीढियो तक अन्तर-विवाह होता आया हो, उन्हे भी हम एक जाति के रूप मे मान सकते हैं। उनके वर्गीकरण का उद्देश्य वशानुक्रम के कारण उनके परस्पर सम्बन्धो के रूपो को प्रकट करना है ताकि ऐसी वशावलियाँ तैयार की जा सके जिनसे इकाई व्यक्त कई समूह हो। इसके लिए अन्वेषक मुख्यत: उन प्रमाणो से काम लेता है जो स्वय लोगो मे निहित होते है और जो जीवन की परिस्थितियाँ बदल जाने पर भी अनेक पीढियो तक बने रहते है। इन्हे जातिगत लक्षण कहा जा सकता है और उनमे प्रभेद करने के लिए जननविज्ञों द्वारा मार्ग दर्शन की आवश्यकता है।

जातियो मे प्रभेदो की मुख्य समस्या को अब दूसरे शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि कौन से लक्षण जन-समूहो मे जातिगत विभिन्नताएँ पैदा करते है। इसका सम्बन्ध इस बात से है कि वश-परम्परा की दृष्टि से किसी जाति का क्या स्वरूप है और जिन वाह्य परिस्थितियो मे उसे गुजरना पड़ता है उनके प्रभाव से उसमे क्या परिवर्तन हो गये है। इसके बाद हमारा लक्ष्य यह तय करना है कि जातिगत विभिन्नताएँ किस हद तक होती है और उनका क्या महत्व है।

शारीरिक लक्षणों में जातिगत विभिन्नताएँ

जब लोगो ने अपनी धारणाओं को लिपिबद्ध करना भी न सीखा था उससे भी बहुत पहले मनुष्यों के शारीरिक लक्षणो का अन्तर दिलचस्पी का विषय रहा होगा। प्राचीन साहित्य मे जातियो के अनेक वर्णन मिलते है और प्रारम्भिक चित्रकला मे भी उनको चित्रित किया गया है। इन दोनो प्रकार के माध्यमो मे समूह विश्लेषण के व्यक्तियो का जो चित्रण हुआ है उसमे बहुत साम्य है। साधारणत बोल-चाल मे किसी जाति समूह की चर्चा करते समय चेहरे मोहरो का वर्णन इस प्रकार किया जाता है मानो किसी एक व्यक्ति का जिक्र किया जा रहा हो। किसी भी जाति समूह के लोगो के नाक नक्शे आपस में एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ अवश्य ही भिन्न रहे होगे लेकिन आमतौर पर विभिन्नताओ का वर्णन नही किया गया। रिवाज कुछ ऐसा पड गया कि इस विवेचन को करते समय मानव समाज को 'प्रतिरूपो' मे बाँटा जाने लगा और इन प्रतिरूपों के लक्षणो के अन्तर को बढा-चढा कर बताया जाने लगा। प्राचीन लेखको ने जिन लोगो का वर्णन किया है, उनके प्रति यही रुख अपनाया है। परिचित जगत से बाहर समझे जानेवाले लोगो का जो प्रामाणिक तौर पर वर्णन किया गया है, उसमे प्राय इन समुदायो के असाधारण लक्षणो को मानव और अर्ध-मानव के बीच किसी रूप मे दर्शाया गया है।

अठारहवी सदी के अन्त तक मनुष्य की विभिन्न जातियो के इस वर्णन मे कोई खास अन्तर नही आया। इस समय तक दुनियाँ के उन अधिकाश भागो का जहाँ मनुष्य रहते थे पता लग चुका था, किन्तु यह विश्वास कि ये मानव जातियाँ सभ्य जगत से भिन्न हैं या निम्न कोटि की है, समाप्त नही हुआ था। जिज्ञासुओ द्वारा छानबीन करने और व्यक्ति सम्बन्धी मनुष्य के ज्ञान को व्यवस्थित करने की चेष्टा के बाद अन्त मे यह विश्वास अमान्य ठहराया गया। उन्नीसवी सदी के प्रथम दशकों मे इन जिज्ञासुओ के विशेषकर गोटिंगेन के प्रोफेसर ब्लूमेनबेख के ग्रन्थो की चर्चा व्यापक रूप से हुई। उस समय सुदूर छोरो पर रहनेवाली जातियो के वर्णन यात्रियो की कहानियो से अधिक कुछ नही थे। प्राचीन यूनानी लेखको की भाँति इन्होने भी जातियो का वर्णन एक प्रतिरूप की तरह किया था और उनकी आपसी विभिन्नताओ का कोई जिक्र नही किया था। अपनी जाति के लोगो की सूरत शक्ल के अन्तर को प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है।

लेकिन अपनी जाति से भिन्न जाति वाले लोगो की विशेषताएँ देख कर उसका ध्यान उन्ही पर केन्द्रित हो जाता है और उसे सभी अपरिचित लोग एक से नज़र आने लगते है। इन अपरिचित व्यक्ति समूहो के अन्तर का वर्णन तो किया जाता है और शायद बढा-चढा कर—किन्तु अपरिचित समूह के लोगो मे आपस मे अन्तर जो होता है उसका वर्णन नही किया जाएगा। इस अन्तर का शब्दश वर्णन जिससे वह अन्तर भली प्रकार समझ में आ सके बहुत ही लम्बा और दुष्कर कार्य होता है। सुव्यवस्थित खोजबीन से पहले जो गलत धारणा रही उसकी जिम्मेदारी उस साहित्य पर है जिसमे मानव समूहो के बीच शारीरिक लक्षणो का वर्णन है। और यह धारणा आम लोगो मे आज भी बनी हुई है। इस धारणा के अनुसार पुरानी जातियो के लोगो मे स्पष्टत अन्तर था और जैसा कि ऐतिहासिक ग्रन्थो से पता लगता है किसी भी समूह विशेष के सभी लोग सूरत-शक्ल मे बहुत कुछ एक से होते थे। जैसा कि यात्रियो के वर्णन मे मिलता है विचारको की पहुँच के बाहर सुदूर बस्तियो मे रहनेवाले लोगो के बारे मे भी ऐसी ही स्थिति का अनुमान कर लिया गया था। विचारको को भी यह मानना पड़ा कि उनके अपने देशवासियो की शारीरिक बनावट मे काफी वैषम्य था। इसके अतिरिक्त समहो के बीच अन्तर को कम आँका गया। ज्यों-ज्यो यह सूचना एकत्रित होती गई यह स्पष्ट हो गया कि लोगो के बीच उतना ही अन्तर है जितना अन्य समूह के लोगो मे, जैसा कि अभिलेखो से पता चलता है। प्राग्-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक अतीत के लोग और आज की दुनियाँ के सुदूर भाग में रहनेवाले लोग दर असल आज के अधिक सभ्य भागो मे रहनेवाले लोगो की अपेक्षा बहुत कम परिवर्तनीय थे या है। नवीन धारणाओ के अनुसार इस विषय मे सभी लोग समान है और इससे पता चलता है कि लोगो के प्रतिरूपो के बीच जितना पहले अनुमान किया जाता था उसकी अपेक्षा कम अन्तर है। जैसे पर्याप्त वर्णन एकत्र होते गये इन समहो के अनुमत अन्तर भी घटते गये।

दृष्टिकोण में इस अन्तर का कारण नये ढग के प्रमाणो का सग्रह है। मानव शास्त्र की सभी विचारधाराओ के विद्वानो ने यथासम्भव सही और सीधे तरीको से मनुष्यो की जानकारी एकत्र करनी आरम्भ की। अन्वेषको का उद्देश्य जाति समूहो की तुलना इस प्रकार करना था जिसमे उनके जातिगत सम्बन्धो और इतिहासों का पता चले। इस विषय को दो प्रकार की सरणियो में अध्ययन किया गया। एक तो जीवित मानव समुदाय से सम्बन्धित और दूसरे पुरातत्व-वेत्ताओ द्वारा खोज निकाले गये ककालो से सम्बन्धित रहने वाली। लेकिन जिन जाति समूहो के बारे मे यह जानकारी इकट्ठी की गई उनकी तुलना मे इन सरणियो का आकार-प्रकार बहुत ही छोटा था।

यह स्पष्ट था कि जो अध्ययन करना है उसमें सारे शारीरिक लक्षण उपयोगी हो सकते। इसलिए जातिगत महत्व के समझे जानेवाले यानी माँ-बाप से जन्मजात प्राप्त होनेवाले और निकट पडोस के वातावरण से बहुत कम प्रभावित या अप्रभावित रहनेवाले लक्षणो को चुनना पडा। ऐसे ही कुछ लक्षणो से समूह सम्बन्धो का पता चल सकता था, बाकी से यह सम्भव नही था। इस समस्या पर विचार करते समय सबसे अधिक उपयोगी लक्षणो की अपेक्षा अनुपयुक्त लक्षणो को पहचानना आसान है। असख्य बातो में सभी मनुष्य समान है, व्यापक रूप से देखें तो सभी एक बनावट के है और सबमे एक ही सी शक्तियाँ है। यह ससार के सभी भागो मे बसनेवाले लोगो के बारे में कहा जा सकता है। और ऐतिहासिक लेखा-जोखा आरम्भ होने से पहले भी यही स्थिति थी। जिन बातो मे सब मनुष्य समान है उनकी अपेक्षा ये बाते नगण्य सी है, जिनमे मनुष्यो मे अन्तर होता है। लेकिन इन अन्तर वाली बातो के सहारे ही व्यक्तिगत और सामूहिक विशेषताओ का पता चलता है। दोनो प्रकार की विभिन्नताओ को परिवर्तनीय लक्षणो द्वारा दर्शाया जाता है। इनमे कुछ लक्षण तो मानव समाज के दो या इससे अधिक समूहो की असतत विभिन्नताओ के द्योतक होते है। और अन्य ऐसे होते है जो इन समूहो की सतत विभिन्नताएँ दर्शाते है। नाप तोल किये जा सकने वाले सारे लक्षण सतत विभिन्नताएँ दर्शाने वाली श्रेणी के होते हैं।

जातिगत तुलना करने के लिए कुछ परिवर्तनीय लक्षण उपयुक्त होते है और दूसरे अनुपयुक्त। प्रत्येक परिवर्तनीय लक्षण शारीरिक या जननिक कारणों की सृष्टि होता है और लोगो का जीवन जिन परिस्थितियो से गुजरता है उनका इन लक्षणो पर कुछ अपवादो को छोड कर थोडा बहुत प्रभाव अवश्य पडता है। कुछ थोडे से परिवर्तनीय लक्षण ऐसे भी है जिनकी उत्पत्ति पित्रागति से ही मानी जाती है। इनमे से कुछ जैसे रुधिर समूह तो मनुष्य मे जीवन भर बने रहते है और कुछ जैसे बालो और आँखो का रग अवस्था के साथ परिवर्तत हो सकते हैं, लेकिन इनमें अधिकाश वयस्क जीवन मे प्राय एक से रहते है।

दूसरी ओर ऐसे परिवर्तनीय शारीरिक लक्षण है जिन पर आस-पास की परिस्थितियो का प्रकटत काफी प्रभाव पडता है। इस श्रेणी मे कुछ लक्षण जैसे बहुत से दैहिक माप ऐसे है जो व्यक्तियो मे काफी और जल्दी-जल्दी घटते-बढते रहते हैं और दूसरे वे जैसे शरीर की कोमल तन्तुओ पर निर्भर करनेवाले लक्षण जिन्हे धड की तथा अगो की मोटाई या भार से आँका जा सकता है जो मन्द गति से घटते-बढते है। कुछ ऐसे भी लक्षण है जैसे सवेदी शक्तियाँ, जो जीवन भर अवस्था के साथ-साथ घटती-बढती रहती है और जो व्यक्तियो मे अपेक्षाकृत

और भी मन्दगति से घटती-बढती है यद्यपि इनके बारे मे यह नही दिखाया जा सकता कि इनमे जीवन की परिस्थितियो के कारण परिवर्तन होता है।

परिवर्तनीय लक्षण इतने अधिक विभिन्न ढग मे आचरण करते है कि इनमे से ऐसे लक्षणो का छाँटना जो जन-समूहो की जातिगत और शारीरिक विभिन्नताओ को जताने के उपयुक्त हो बडी ही जटिल समस्या है। यह भी सम्भव नही कि ये सभी जातिगत महत्व के हो क्योकि इन सभी का जननिक कारणो से थोड़ा बहुत सम्बन्ध है। लेकिन विशेष लक्षणो के महत्व का पता लगाना तभी सम्भव हो सकता है जब उन पर बाह्य परिस्थितियो के तथा अवस्था के परिवर्तन के प्रभाव को जानने का कोई ढग निकल सके। जिन लक्षणो पर इन दोनो का अधिक प्रभाव पडता है वे जातिगत विभिन्नताओ का पता लगाने के अनुपयुक्त है, क्योकि उनको लेने से अध्ययन कठिन और जटिल हो जाएगा। जिन लक्षणो पर उक्त बातो का कम प्रभाव पडता है वे इस अध्ययन के लिए उपयुक्त है और जो इनसे बिल्कुल अप्रभावित रहते है वे तो इस काम के लिए आदर्श है।

लगभग सौ वर्ष पहले जिन मानव शास्त्रियों ने जाति समूहो के शारीरिक लक्षणो के बारे मे क्रमबद्ध ढग से प्रमाण जुटाने का काम आरम्भ किया था उन्होने यद्यपि इन कठिनाइयो की स्पष्ट रूप से चर्चा तो नही की लेकिन इनकी ओर सकेत किया है। सभी अनुसन्धाता इस बारे में एकमत थे कि वयस्क ढाँचे के अधिकाश लक्षण जातिगत विभिन्नताओं का पता लगाने के लिए उपयुक्त होते है और उन लक्षणो का वर्णन नाप तोल मे किया जाता था। इस काम के लिए भी कि प्रणाली अपनाने से इस अध्ययन मे सुतथ्यता आ गई जिसका पहले बड़ा अभाव था। दुनिया के सुदूर भागो की खुदाइयो मे ज्यो-ज्यो नर-ककाल मिलते गये अध्ययन की परिधि, काल और क्षेत्र दोनो दिशाओ मे बढती गई। जीवित मनुष्यो के शरीरो के कुछ मापो को भी जातिगत वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना गया। वास्तव में यह भी अप्रत्यक्ष रूप से ढाँचे के ही माप थे, क्योकि इन्हें खाल के नीचे हड्डियो को टटोल कर लिया जाता था। यह स्वीकार किया गया कि हमारे शरीर के भार और मोटाई जैसे माप, जो अधिकाश रूप मे बाह्य परि-स्थितियो पर निर्भर करते है, इस अध्ययन के लिए अनुपयुक्त है।

इन मानव शास्त्रियो ने जिन लक्षणों को साधारणतया इस अध्ययन के लिए उपयुक्त माना वे थे : त्वचा का रग, बालो और आँखो का रग, तथा बालो का रूप और बनावट। रग तथा अन्य मापो के प्रयोग से इन लक्षणो के ठीक-ठीक उल्लेख को बढावा मिला। विभिन्न जातियो मे पाई जानेवाली ढाँचो की तथा दैहिक विलक्षणताओं की बारबारता भी जातिगत महत्व की मानी जाने लगीं।

आधुनिक विचारधारा के प्रारंभिक मानव-शास्त्रियो ने यह माना कि उपयुक्त रूप से चुने गये जन-समूहो के चुनीदा लक्षणो की विभिन्नताएँ उनके उद्भव की विषमता की द्योतक समझी जा सकती है और इन विभिन्नताओ के प्रक्रमो के सहारे जातिगत वर्गीकरण किया जा सकता है। इसके लिए लक्षणो का जो चुनाव किया गया वह आवश्यक तौर पर कुछ कृत्रिम ही था। धारणा यह थी कि जो लक्षण छाँटे गये है उन सब की उत्पत्ति यदि पूर्णतया नही तो अधिकाश रूप में पित्रागति से होती है। साथ ही इस बात को अस्वीकार नही किया गया कि कुछ हद तक बाह्य परिस्थितियाँ भी इन्हे प्रभावित करती है। यह सत्य है कि ऐसा होता है। उदाहरण के लिए त्वचा के रग को ले यद्यपि हलके रगवाली त्वचा धूप से गाढे रग की हो जाती है, लेकिन यदि इस तथ्य का ध्यान रखे तो यह लक्षण एक ऐसा प्रतीत होता है जो स्पष्ट रूप से जातिगत विभिन्नता दर्शाता है। कुछ लक्षण दूसरो की अपेक्षा अधिक काम के होते है, क्योकि भिन्न-भिन्न लक्षणों से भिन्न-भिन्न मात्रा मे जातिगत विभिन्नताओ का पता लगता है।

प्राणि-विज्ञान के अनुसार मनुष्य का जो वर्गीकरण किया गया था वह १९वी शती के अन्त तक काफी मान्य हो चुका था और उसके बारे मे काफी तथ्य एकत्र किए जा चुके थे। जानकारी की वृद्धि के साथ-साथ खोज-बीन के तरीको में भी सुधार की आशा की जाती थी। इस समस्या से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण और नये विचार वही है जो पित्रागति के विज्ञान से मिले है। पित्रागति विज्ञान की विचार प्रणाली और निष्कर्ष वर्तमान शताब्दी मे स्थिर हो चुके है। अब जनन-शास्त्रियो का निर्णय ही प्रमाणभूत है इस विषय मे कि जातिगत वर्गीकरण के लिए कौन से लक्षण सबसे अच्छे साबित होगे। सिद्धान्तत आदर्श माने जानेवाले नये लक्षणो को इस सूची मे शामिल करके इन्होने महत्वपूर्ण योग दिया है। मानव रक्त वर्ग भी इन्ही मे से है जिनकी कुछ प्रणालियो का विवरण ससार के सभी भागो के अनेक लोगो के सम्बन्ध मे एकत्र किया गया है। लेकिन पहले जमाने मे जिन लक्षणो को जातिगत विभिन्नताएँ दर्शाने के लिए उपयुक्त माना जाता था उनको आज जनन-विज्ञान की कसौटी पर कसने से भी इस काम के लिए उनकी उपयुक्तता के बारे मे जो पहली राय थी उसमे साधारणत: कोई विशेष सुधार नही हो पाया है।

जन-समूहो की जातिगत तुलना करने की पहली सीढी है जातिगत महत्व के लक्षणो को ढूँढ निकालना। इस काम के लिए किसी लक्षण को स्वीकार करने से पहले यह दिखाना होगा कि व्यक्तियो मे उस लक्षण के जो प्रक्रम मिलते है यदि बिल्कुल नही तो मुख्यत पित्रागति की उत्पत्ति होते है। इस दृष्टि से हर लक्षण पर पृथक-पृथक विचार करना चाहिए जो काफी कठिन है, क्योकि हर लक्षण के

अपने पहलू भिन्न होते है। लक्षणो की सूची का निर्णय कर लेने और उन सम्बन्धी विशेष परिस्थितियो जैसे कद और ढाँचे से सम्बन्धित लक्षणो के बारे मे यह आवश्यक है कि केवल वयस्क व्यक्तियो का ही अध्ययन किया जाय—कि जानकारी कर लेने पर अगली सीढी है, इस अध्ययन के लिए चुने चुने अनेक समुदायो के लोगो के इन लक्षणो का लेखा जोखा तैयार करना। तुलना व्यक्तियो की नही बल्कि समूहो की की जानी है। इसलिए प्रश्न यह है कि उपलब्ध जानकारी का इस काम के लिए किस प्रकार उपयोग किया जाए। यह स्मरणीय है कि समूहो की विभिन्नताओ की साहित्यिक चर्चा की सबसे बडी कमजोरी यही रही है कि उस प्रणाली मे जन-समूहो की तुलना करने का कोई क्रमबद्ध ढग नही था। इस समस्या पर विचार करने की आधुनिक वैज्ञानिक रीति ऐसी है जिसमें समूहो सम्बन्धी आँकडो का क्रमबद्ध अध्ययन करना सम्भव है।

पहले इन रीतियो का उपयोग शारीरिक लक्षणो सम्बन्धी सामग्री के अध्ययन मे किया गया और उस क्षेत्र मे इनका खूब उपयोग हुआ। मानसिक लक्षणो की सामग्री के अध्ययन मे भी कुछ हद तक इनका उपयोग किया गया है। शारीरिक लक्षणो के अध्ययन से प्राप्त उन सब अनुभवो का साराश निकाल लेना सुविधाजनक होगा जो सामग्री को लेखबद्ध करने यानी सुगम रूप मे रखने की सर्वश्रेष्ठ रीतियो से ही नही बल्कि विभिन्न समूहो के लेखबद्ध आँकडो की तुलना से भी प्राप्त हुए हो। इस तुलना को करते हुए नयी धारणाएँ उपजती है जिनसे समूहगत विभिन्नताएँ स्पष्ट हो जाती है। यदि शारीरिक लक्षणो के अध्ययन से उपजी हुई धारणाओ का उपयोग मानसिक लक्षणों के अध्ययन मे किया जाए तो उनकी व्याख्या और अध्ययन मे सहायता मिल सकती है।

विभिन्न समूहो के शारीरिक लक्षणों की अध्ययन सामग्री का इन जन-समूहो की तुलना करने मे जिन रीतियो से उपयोग किया जाता है, पहला प्रश्न उनके बारे मे उठता है। सभी परिस्थितियो मे किसी-न-किसी रूप मे साख्यिकीय रीतियाँ ही अपनायी जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है, क्योकि साख्यिकी सामूहिक आँकडों के क्रमबद्ध उपयोग का शास्त्र है। इसकी रीतियाँ सरल भी हो सकती है—जैसे किसी समूह विशेष का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोगो से अलग-अलग रग की आँखो वालो की केवल गिनती कर लेना—या वे बहुत ही विस्तीर्ण हो सकती है जिनमे गणित के जटिल सूत्रो और लम्बे-चौडे हिसाब की जरूरत पडे। लेकिन हर दशा मे उनका लक्ष्य उपलब्ध जानकारी का सही और सक्षिप्त निचोड निकालना होता है। यह बताया जा चुका है कि जातिगत तुलना मे प्रयुक्त किये जानेवाले शारीरिक लक्षणो को ढाँचे के आकार और स्वरूप के माप त्वचा, बाल और आँखो के रग, रुधिर-समूह, आदि जैसे श्रेणियो मे विभक्त

किया जा सकता है। हर श्रेणी के लिए विभिन्न साख्यिकीय रीतियाँ अपनानी होती है। यहाँ एक ही श्रेणी पर विचार किया जायगा और वह है मापो की। इस श्रेणी के लक्षणो को मात्रात्मक लक्षण कहा जाता है ताकि उन्हे उन गुणात्मक लक्षणो से पृथक् किया जा सके जो किसी सतत मापदण्ड से नही मापे जा सकते। तथापि मात्रात्मक और गुणात्मक लक्षणो पर विचार के आम विषय बहुत कुछ एक से है। प्रस्तावना के रूप मे यहाँ थोडे ऐसे पारिभाषिक शब्दो की चर्चा करना सुविधाजनक होगा जिनमे से अधिकाश हर साख्यिकीय विषय के विवेचन मे प्रयुक्त होते है। 'जन-समूह' उन व्यक्तियो के लिए प्रयुक्त हुआ है जिन्हे एक स्वतन्त्र समूह का समझा जाए। जातीय जन-समूह उस समुदाय के लिए है जिसके बारे मे उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर यह विश्वास हो कि उसमे वे लोग है जिनके पुरखे या उनमे से अधिकाश काफी पीढियो से आपस मे विवाह सम्बन्ध करते आये है। इन शब्दो का हमेशा छोटो की अपेक्षा बडे समूहो के लिए प्रयोग किया जाता है और मानव समाज की प्रकृति के कारण यह स्वीकार करना आवश्यक है कि जातिगत समूहो का विभाजन प्राय अस्पष्ट होता है।

मानव समाज का गठन समूहो के भीतर समूहो की स्तरानुक्रम-सा है। 'नमूना' एक ही जन-समूह के लोगो की वह माला है जिसके एक या अधिक लक्षणो की अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो। नमूने इसलिए लेने की आवश्यकता पडती है, क्योकि किसी भी जन-समूह के सब लोगो के बारे मे किसी एक समय सामग्री एकत्र करना असम्भव सा है और समय के साथ जन-समूह बढते रहते है। नमूने को यदृच्छयागृहीत तब तक कहा जाएगा जब तक उसमे सारे जन-समूह का प्रतिनिधित्व हो और उसके किसी विशेष भाग के साथ पक्षपात न किया गया हो। अधिकतर नमूनो मे किसी विशेष भाग के सभी सदस्य नहीं आते बल्कि उसके किसी एक उपवर्ग से मतलब होता है जैसे पुरुष, या महिलाएँ, या किसी निश्चित अवस्था क्रम के बालक, या बालिकाएँ।

किसी विशेष जन-समूह के एक नमूने के एक लक्षण का अध्ययन करना सरलतम है। इसका एक उदाहरण २० वर्षीय ९१,१६१ अग्रेजों की लम्बाई के आँकड़ो मिलता है। इन्हे वहाँ के सैनिक शिक्षा कानून के अन्तर्गत १९३९ मे एक डाक्टरी परीक्षा मे नापा गया था। इस लम्बी माला को लेखबद्ध करने की दृष्टि से लम्बाइयो के पूरे विस्तार को अनेक बराबर-बराबर भागो मे बाँटा जा सकता है। और इस काम के लिए इचो (१ इच = २ ५४ सेटीमीटर) का प्रयोग करना सुविधाजनक होगा। प्रत्येक इच-समूह मे जितने व्यक्ति आएँ उनकी सख्या गिनी जा सकती है जैसा चित्र सख्या १ है। और इनकी वारवारता आयतो की ऊँचाई से दर्शायी जा सकती है, जैसा कि चित्र सख्या १ है। इस चित्र के सारे आयत

इस मनुष्यमाला की पूरी सरणियाँ दर्शाते हैं और इसे उनकी ऊँचाइयों का विस्तरण कहा जाता है।

यहाँ तक तो लघुकरण बहुत सरल है और प्राप्त जानकारी का जो सार इस विधि से मिलता है वह शाब्दिक वर्णन से कही ठीक है। यह उन पूर्वदूषित विचारो से भी युक्त है जो अभिलेखो को तोडने-मरोड़नेवाले किसी व्यक्ति के
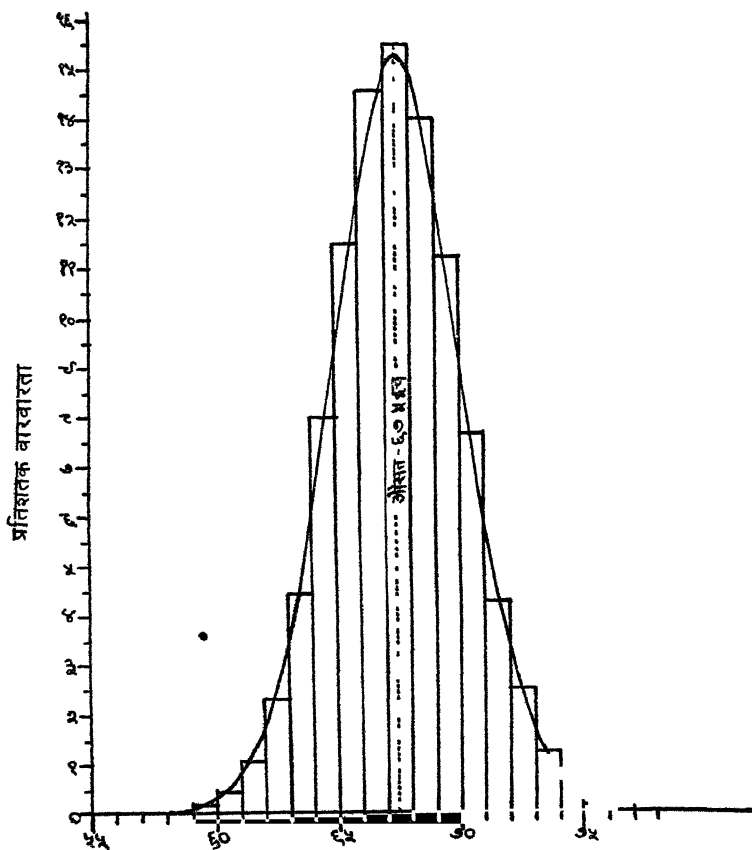
चित्र १ : २० वर्षीय ९१,१६१ ब्रिटिश पुरुषों की लंबाइयों का विस्तरण जिसमे कि अभिलंब वक्र भी खींचा हुआ है।

यह विस्तरण डा० जे० मार्टिन ने १९४९ के मेडीकल रिसर्च कौंसिल मेमोरंडम संख्या २० में दिया था। इसका विस्तार ४८ से ८१ इंच तक है और अंतिम सिरों पर वारंवारता इतनी कम है कि वह इस अनुमान में दर्शायी नहीं जा सकती।

मन मे अग्रेजो की ऊँचाई के बारे मे हो सकते है। रेखाचित्र पर दृष्टि डालते ही यह पता चल जाता है कि अधिकाश लोगों की ऊँचाई औसत मान के आस-पास है और जैसे ही इस मान से दोनो सिरो की ओर बढते है तो वारवारता एक नियमित ढग से घटती जाती है। प्राप्त ऑकडो को लिखने के ढग से—चाहे उन्हे सारिणी के रूप मे लिखा जाए या रेखाचित्र की शक्ल मे—उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है और समूह सम्बन्धी जानकारी के अध्ययन की यही सबसे अच्छी रीति है।

मानव लक्षणो के अभिलेखो के अध्ययन के लिए इस रीति के महत्व पर सबसे पहले बेल्जियम के प्रसिद्ध खगोल शास्त्री श्री एडाल्फ क्वेटलेट ने जोर दिया था। श्री क्वेटलेट एक प्रसिद्ध मौसम-शास्त्री, साख्यिकी-शास्त्री और मानव-शास्त्री भी थे। उन्होने यह दिखाया कि इस प्रकार के "विस्तरण" को गणित के वक्रो की एक श्रेणि द्वारा बडी अच्छी तरह दर्शाया जा सकता है। इनमे से जिनका प्राय प्रयोग किया जाता है उसे अभिलम्ब वक्र कहते है। और यह चित्र संख्या १ मे, जिसमे अग्रेजो की लम्बाई का विस्तरण चित्रित किया गया है, अकित है। इस रेखा चित्र मे मनुष्य की लम्बाई के प्रक्रमो को दर्शाने के लिए खण्डो की जो चौडाई रखी गयी है वह यदृच्छया गृहीत है। यदि सँकरे खण्ड रक्खे जाते तो आकार और नियमित हो सकता था, क्योकि काफी बडा नमूना लिया गया है। यदि इसके आकार को क्रमश बढाते जाएँ तो उसके अनुसार ही अपेक्षाकृत सँकरे खण्डो का प्रयोग किया जा सकता है और आशा है कि ऐसा करने से बाहरी रेखा धीरे-धीरे सतत वक्र का रूप लेती जायेगी। जिस जन-समूह मे से हमने नमूना लिया है इस अभिलम्ब वक्र को उनकी लम्बाई के विस्तरण को दर्शाने-वाला माना जा सकता है।

मापो के कुलकों का हिसाब लगाने और उनसे जाति-समूहो की विशेषताओं को पढने की यह रीति ही शारीरिक लक्षणो के अभिलेखो के क्रमबद्ध अध्ययन का आधार है। अनुभव से पता चला है कि सब जातियो मे जातिगत महत्व के जो नापे जा सकनेवाले लक्षण होते है, अभिलम्ब वक्र ही उनके विस्तरण का प्रारूपिक आकार है। ये नाप जीवित मनुष्यो की या कंकालों की लम्बाई या अन्य माप हो सकते है या वे आकार के बजाय परिमाण के द्योतक हो सकते है। जैसे : घाताक : जैसे सिर के घाताक जो खोपडी की अधिकतम चौडाई का इसकी अधिकतम लम्बाई के प्रतिशतक के रूप में खोपडी के आकार को बताते है . या कोण : जैसे जबड़ा कितना बाहर को निकला हुआ है यह बतानेवाला कोण : हो सकते हैं।

यदि चार या पाच सौ व्यक्तियों मे से थोडी-सी संख्या वाला नमूना लिया जाए तो इस हालत में बिल्कुल सैद्धान्तिक वक्र के समान परिणाम की आशा नही

की जा सकती और ऐसे विस्तरण मे यदि थोडी हेर-फेर होगी तो उसे महत्व नही देना चाहिए। अनुभव यह है कि ज्यो-ज्यो नमूना बडा लिया जाता है, त्यो-त्यो वक्र अभिलम्ब वक्र के रूप का होता जाता है। कभी-कभी वक्र का जो रूप होता है वह किसी हद तक प्रारूपिक आकार से भिन्न प्रकार का हो सकता है और इसका कारण प्राय यह होता है कि सामग्री एक ही जाति के लोगो की न हो कर दो या इससे अधिक जातियो के मिश्रण की होती है या नमूना होता तो एक ही जाति का है, लेकिन उसे अनायास नही छाँटा गया हो तो जब जातिगत महत्व के मापो को लिया जाता है तो अभिलम्ब वक्र आना एक नियम सा है।

यह अनुभव उस रीति का भी सकेत करता है जो अध्ययन के अगले चरण यानी विभिन्न समूहो की तुलना के लिए अपनायी जानी चाहिए। नमूनो से जो विस्तरण मिलेगा उसकी तुलना से ही जन-समूहो की तुलना की जाएगी और इस काम के लिए जो नमूने लिए जायेगे उनके अभिलम्ब वक्र खीचे ही जा सकते है। प्रश्न है कि अभिलम्ब वक्रो मे क्या अन्तर हो सकते है? उनके दो गुणो के कारण ही उनमें दो महत्वपूर्ण अन्तर होते है। पहला तो यह कि एक ही लक्षण पर विचार करते समय दो विस्तरणो के औसत अलग-अलग हो सकते है। और दूसरा यह कि उनके फैलाव या बिखरान मे अन्तर हो सकता है। मापो के एक कुलक का औसत तो परिचित बात है। व्यक्तिगत आँकडो मे जितना अन्तर होता है उसी के हिसाब से विस्तरण का फैलाव होता है। इसे आँकने की एक कसौटी का महत्व भी आमतौर पर समझा जाता है और वह है विस्तार। जिस लक्षण पर हमने विचार किया है उसमे यह विस्तार है नमूने के सबसे लम्बे आदमी की और सबसे ठिगने आदमी की लम्बाइयो का अन्तर हालाँकि विस्तार विभिन्नता का ठीक नाप नही होता।

इससे कही अच्छी कसौटी जिसका प्राय इस काम मे उपयोग किया जाता है नमूने के सब मापो से निकाली जाती है। उसे **'मानक विचलन'** कहा जाता है और इसका जितना बडा मान हो विस्तरण का उतना ही अधिक फैलाव समझना चाहिए। एक अभिलम्ब वक्र के औसत मान और विभिन्नता के इस माप से उसकी पूरी व्याख्या हो जाती है। ससार के सभी भागो मे रहनेवाली जातियो के जीवित लोगो की अनेक मालाओ मे और प्राचीन काल की जातियों के ककालो की (अधिकतर केवल खोपडियो की) अनेक मालाओ के "मानक विचलन" उपलब्ध हैं। यह प्रमाण उन अनेक मापो के बारे में है जिन्हें जातीय लक्षण माना जाता है, और ये विभिन्न जन-समहो की परिवर्तनशक्यता मे किस हद तक अन्तर होता है, इस सम्बन्धी सामान्य मानो को पुष्ट करने योग्य काफी विस्तृत है।

साधारणतया समूहो मे इस प्रकार का अन्तर प्राय जितना समझा जाता है उससे कही कम होता है। आधुनिक योरोप के लोगो मे दुनिया के अन्य भागो के लोगो की अपेक्षा अधिक परिवर्तनीय प्रवृत्तियाँ है लेकिन यह एक प्रवृत्ति से अधिक कुछ नही जिसमे अपवाद भी हो सकते है। सुदूर के द्वीपो के समुदायो मे न्यूनतम परिवर्तनीयता पायी जाती है लेकिन उनमे और मुख्यभूमि के लोगो मे कोई स्पष्ट अन्तर नही होता। खोपडियो की जिन मालाओं के नापे जा सकने-वाले लक्षणों के मानक विचलन उपलब्ध है उनसे पिछले ७००० वर्षों की जातीय जन-समूहो की सापेक्षा परिवर्तनशक्यता का आभास मिलता है। प्राचीन काल की मालाएँ आधुनिक मालाओं की अपेक्षा प्राय कम परिवर्तनीय होती है। लेकिन जितना प्राय समझा जाता है इस सारी अवधि मे उससे बहुत कम अन्तर हुआ है। इस प्रश्न पर सूक्ष्मता से विचार तो केवल साख्यकीय प्रमाणों द्वारा और निष्कर्षों को साख्यिकीय रूप मे पेश कर के ही किया जा सकता है। लेकिन इस कथन से भी काफी आभास मिलता है कि जिन जातियो के बारे मे यथेष्ट अभिलेख उपलब्ध है उनमे परिवर्तनीयता एक ही प्रकार की होती है। साहित्यिक विवेचन पर आधारित इस विश्वास को कि ससार के दूरस्थ प्रदेशो की आधुनिक जातियो और प्राचीन काल की तमाम जातियाँ आज के योरोप की जातियो की अपेक्षा निश्चित रूप से कम परिवर्तनीय है (या थी) केवल एक लोक प्रचलित भ्राति ही कहा जा सकता है।

यह स्वीकार करना पडेगा कि जातियो के नापे जा सकनेवाले तथा जातिगत लक्षणो के विस्तरण का आकार कोई ऐसी कसौटी नही जो इन समूहो मे कोई महत्व का अन्तर दर्शाये क्योकि यह लगभग एक रूप होता है। विस्तरण द्वारा दर्शायी जानेवाली विभिन्नता की मात्रा अपेक्षाकृत कम एकरूप होती है, परन्तु उसमे अन्तर भी बहुत अधिक नही होता। समूहो मे एक महत्व का अन्तर अवश्य होता है और वह है कि किसी लक्षण विशेष का औसत मान सब समूहो का पृथक्-पृथक् होता है। अब जरूरी प्रश्न यह है कि जातियो के जातिगत मापो के औसत मान मे किस हद तक अन्तर होता है और जातियो के इस अन्तर और एक ही जाति के विभिन्न सदस्यों के बीच पाये जानेवाले इस प्रकार के अन्तर में क्या सम्बन्ध है। इन प्रश्नो के उत्तर से जातिगत विभिन्नताओ का महत्व ठीक समझ मे आ सकेगा।

इनका कोई साधारण या सरल उत्तर नही हो सकता, क्योकि यह तो मालूम ही है कि विभिन्न लक्षणो के अध्ययन से इस प्रश्न के पृथक्-पृथक् उत्तर मिलेगे। चित्र २ और ३ मे दो स्थितियो का चित्रण है। पहले चित्र में कद का चित्रण है और इसमे सबसे ऊपर दुनिया के सबसे ठिगने या सबसे ठिगनों

मे से एक समझे जानेवाले लोगो, के कागो के बौनों, के नमूने की लम्बाइयो का विस्तरण दिया गया है। बीच वाले रेखा चित्र मे सूडान की एक जाति (दिनका) के लोगो के एक नमूने का विस्तरण किया गया है। यह जाति दुनियाँ की सबसे लम्बी जातियो मे से है। इन दोनो विस्तरणो के विस्तार आपस मे मिलते हैं।
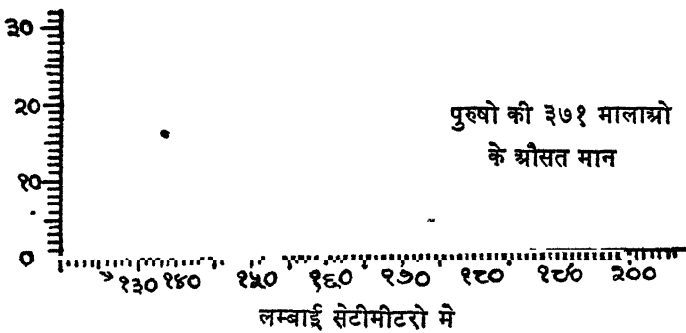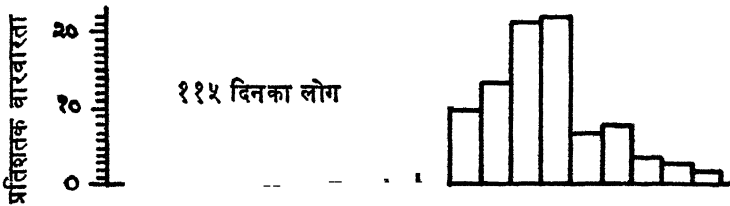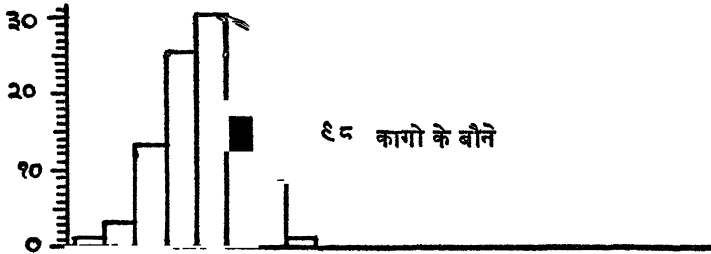
चित्र २ : निम्नलिखित की लंबाई के विस्तरण :

(क) ३७१ मालाओं में से न्यूनतम औसतवाली माला (कांगों के बौने लंबाई का औसत १४३ सेंटीमीटर)

(ख) अधिकतम औसतवाली माला (नील नदी के निकटवर्ती सूडान के ११५ दिनका लोग, लंबाई का औसत १८० सेंटीमीटर)

(ग) पुरुषों की ३७१ मालाओं के औसत मान।

अर्थात् सबसे लम्बे बौने की लम्बाई और सबसे ठिगने दिनके की लम्बाई लगभग बराबर होती है और यदि दोनो जातियो मे से नमूने के तौर पर बडी सख्या ली जाये तो यह भी सम्भव हो सकता है कि ये दोनो लम्बाइयो किसी कदर बिल्कुल बराबर ही हो जाये। यह दो चरम समूहो की तुलना हुई। चित्र सख्या २ के नीचे दुनियाँ के सब भागो मे रहनेवाली जातियो के लोगो की ३७१ मालाओ की औसत लम्बाई का विस्तरण दिया गया है और पहले दोनो के समान यह भी अभिलम्ब वक्र के आधार को बहुत मिलता-जुलता है। यह स्पष्ट है कि जाति-गत मालाओं के जोड़ो मे तुलना करने से लम्बाई के विस्तरण काफी हद तक एक दूसरे को ढँक लेगे और हरेक विस्तरण का जो विस्तार है उसकी तुलना मे उनके औसत मे बहुत कम अन्तर होगा। यह कद के बारे में बात है और इस लक्षण के लिए कहा जा सकता है कि एक समूह के लोगो मे परस्पर जैसे विभिन्नता होती है उसी प्रकार की विभिन्नता समूहो में यानी उनके औसत मापो मे होती है।

चित्र संख्या ३ मे एक अन्य लक्षण यानी खोपड़ी की क्षैतिज परिधि का चित्रण है। जैसा कद वाले मामले मे किया गया था इसमे भी न्यूनतम औसत वाली मालाओ (११६ में शामिल) और अधिकतम औसत वाली मालाओ के विस्तरण खीचे गये है। इन चरम विस्तरणों के विस्तार काफी हद तक एक दूसरे को ढँक लेते है और ये लम्बाई के चरम समूहो की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक निकट है। ११६ मालाओं औसत क्षैतिज परिधियो का विस्तरण भी दिया गया है और उससे यह स्पष्ट है कि मालाओं के अधिकाश जोडो के विस्तरण काफी हद तक एक दूसरे को ढँक लेते है। इस लक्षण के बारे मे यह कहा जाता है कि एक ही समूह के लोगो मे मिलने वाली पारिस्परिक विभिन्नता की अपेक्षा समूहों मे काफी कम विभिन्नता होती है।

इस प्रकार पृथक्-पृथक् लक्षणो के अध्ययन से पृथक्-पृथक् परिणाम मिलते है। और इसी प्रकार का विश्लेषण करके उनसे जिस हद तक जातियों की विभिन्नता का पता चलता है उसके अनुरूप उनके प्रक्रम बनाये जा सकते है। एक ओर कद है जो सबसे अधिक विभिन्नता का द्योतक है। सिर सम्बन्धी घाताक (यानी खोपडी की अधिकतम चौडाई का उसकी अधिकतम लम्बाई से प्रतिशतक) भी ऐसा ही है। इस अध्ययन के लिए जो लक्षण उपयुक्त माने गए है उनमें से जहाँ तक मालूम है ये दो माप ऐसे है जिनका जातिगत विभिन्नताओ का पता लगाने के लिए सफलता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है। अन्य अधिकाश लक्षणो का हाल खोपडी की क्षैतिज परिधि जैसा ही है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लक्षण है जिनके कारण एक ही समूह के विभिन्न व्यक्तियों मे पायी जानेवाली विभिन्नता की अपेक्षा विभिन्न समूहो मे पायी जानेवाली विभिन्नता निश्चित रूप

से कम होती है। और जातियो के सभी जोडो के विस्तरण काफी हद तक एक दूसरे को ढँक लेते हैं। इस प्रकार के लक्षण जातिगत विभिन्नताओ का पता लगाने के लिए सबसे कम उपयोगी होते हैं।

यह समझ लेना भी महत्वपूर्ण है कि अब तक जिन लक्षणो का अध्ययन किया गया है उन सभी के अनुसार समूहो मे विभिन्नता की कुछ मात्रा अवश्य मिली है।
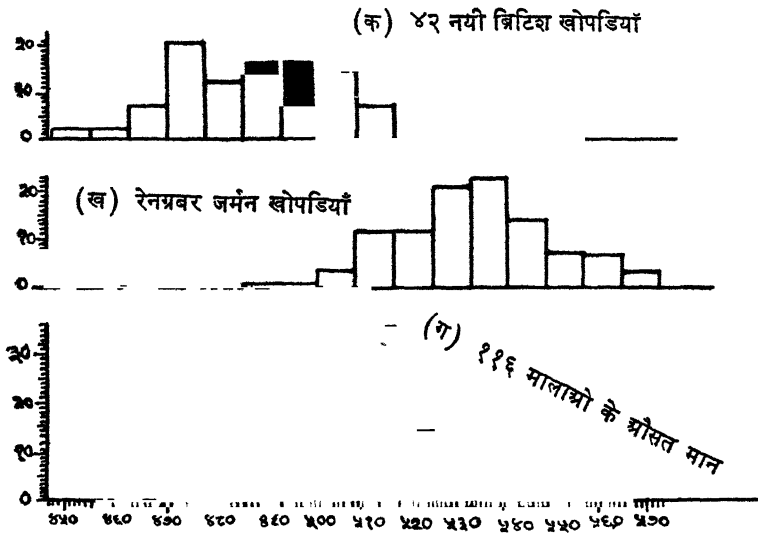
चित्र ३ : निम्नलिखित की खोपड़ियों की क्षैतिज परिधियो का वर्गीकरण :

(क) ११६ वयस्क-पुरुष-मालाओं में से न्यूनतम औसत वाली माला (नये ब्रिटेन के ४२ आदिवासी औसत ४८९ मिलीमीटर)

(ख) अधिकतम औसतवाली माला (१६४ रेनग्रबर जर्मन औसत ५३५ मिलीमीटर)

(ग) ११६ मालाओं के औसत मान

सभी शारीरिक माप किसी जाति विशेष के विभिन्न लोगो मे अन्तर दर्शाते है और ऐसा कोई भी माप मालूम नही जिसके औसत सब जातियो के लिए एक समान आएँ। अलग-अलग लक्षणो से अलग-अलग अशो तक जातिगत विभिन्नताओ का पता चलता है और सभी इस काम के लिए थोडे बहुत उपयुक्त होते हैं। यदि एक ही समूह के लोगो मे अन्तर हो तो यह माना जा सकता है कि कुछ वास्तविक जातिगत विभिन्नताएँ होती हैं।

शारीरिक लक्षणो मे जातिगत विभिन्नताओ के क्रमबद्ध अध्ययन की रीति की रूपरेखा दी जा चुकी है। इसकी पहली सीढी है कुछ उपयुक्त लक्षणो का चुनाव करना और फिर अनेक जातियो के लोगो के नमूनो का अध्ययन करके इन लक्षणो सम्बन्धी अभिलेखो को तैयार करना। नापे जा सकनेवाले लक्षणो के बारे मे अगली सीढी होती है उनके मान के विस्तरण के प्रारूपिक स्वरूप का अध्ययन। यही वह रीति है जिसके द्वारा जन-समूहो के नमूनो के आँकडो के आधार पर उनमे तुलना की जानी चाहिए और इस प्रकार की तुलना जातिगत विभिन्नताओ पर प्रकाश डालती है।

यह उल्लेखनीय है कि इन विस्तरणो मे जो भिन्नता होती है वह शारीरिक लक्षणो की अपेक्षा मानसिक लक्षणो के अध्ययन मे अधिक सहायक हो सकती है। शारीरिक लक्षणो के विस्तरण का प्रारूपिक स्वरूप अभिलम्ब वक्र होता है और कद वाला मामला इसका उदाहरण है। ३७१ जातिगत मालाओ की औसत लम्बाई का विस्तरण चित्र सख्या २ मे दिया गया है। इससे यह हिसाब आता है कि यदि मालाओ के यदृच्छयागृहीत जोडे बनाये जाएँ तो १३० मे से एक जोडे की औसत लम्बाई मे ४ सेटीमीटर से भी कम अन्तर आएगा। यह विस्तरणो के पार्थक्य की मात्रा का द्योतक है जो बहुत विरल नही होती। अन्तर का यह प्रक्रम सिर सम्बन्धी घाताक मे भी लगभग इसी वारवारता मे मिलता है। और ढाँचे के कुछ अन्य मापो मे जिनसे जातिगत विभिन्नताओ का बहुत कम पता चलता है, इसकी वारवारता और भी अधिक होती है।

चित्र सख्या ४ मे दो व्यक्तिगत मालाओ की लम्बाइयो का काल्पनिक विस्तरण खीचा गया है। विस्तरण को काल्पनिक रूप से अभिलम्ब वक्र मान लिया है और एक दूसरे के ऊपर खीचा गया है। उनके औसत का अन्तर ४ सेटीमीटर है और उनका प्रकीर्णन समान है अर्थात् उसका मानक विचलन ७ सेटीमीटर है जो व्यावहार मे पाया जाता है। दोनो वक्र एक दूसरे को काफी हद तक ढँक लेते है और उनसे पता चलता है कि दोनो ही मालाओ मे बहुत लम्बे और बहुत ठिगने लोग है। लम्बे लोगो वाली माला के बहुत से लोग ठिगने लोगो वाली माला 'ख' के लोगो से ठिगने है।

रेखाचित्र मे दोनो मालाओ की लम्बाई के बराबर (४ सेटीमीटर) उप-विस्तार के लिए प्रतिशत वारवारताएँ ली गयी है। १६४-१६८ सेटीमीटर लम्बाइयो के लिए वे बिल्कुल समान है क्योकि अभिलम्ब वक्र समित होता है। १६८ सेटीमीटर से ऊपर सब उपविस्तारो 'क' माला मे अधिक वारवारता है और शीर्षक बिन्दु के बाद तो इसका सापेक्ष बाहुल्य संतत रूप से बढता जाता है। १७२-१७६ सेटीमीटर वाले उपविस्तार के लिए तो माला 'क' की सापेक्ष

वारंवारता 'ख' माला से लगभग दुगुनी है, १८८-१९२ सेंटीमीटर वाले उप-विस्तार के लिए ६ और १ का अनुपात है। मध्यवर्ती उपविस्तार से नीचे वाली ओर भी ऐसी ही स्थिति है। 'ख' माला की वारवारता 'क' माला की अपेक्षा बढती जाती है।

लम्बाई के उपविस्तारों में प्रतिशत के वारंवारता जनसमूह
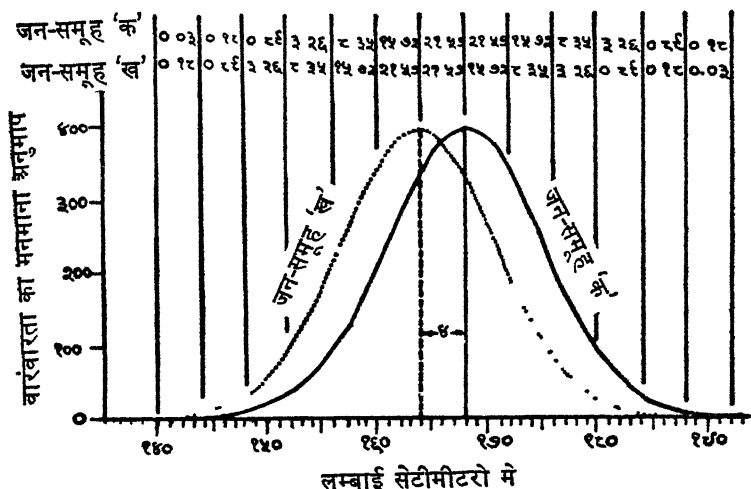
चित्र ४ : दो जनसमूहों की, जिनके औसत मानों में ४ सेंटीमीटर का अंतर है और जिनका प्रकीर्णन समान है (उसका मानक विचलन ७ सेंटीमीटर है। लंबाइयों का काल्पनिक विस्तरण जिसे काल्पनिक रूप से अभिलंब वक्र मान लिया है।

यह उदाहरण यह दर्शाता है कि जब किसी लक्षण विशेष की दृष्टि से दो जन-समूहो का अन्तर उन दोनो समूहो के लोगो के जोडो के अन्तर की अपेक्षा कम होता है तब यह समझ लेना चाहिए कि उस मान के अधिकतम और न्यूनतम मान वाले व्यक्तियो के समूहो की सापेक्ष वारवारताओ मे काफी अन्तर होगा। यह बात कद या अन्य किसी शारीरिक माप के आधार पर समूहो की तुलना करने के लिए कुछ अधिक महत्व की नही है लेकिन मानसिक लक्षणो के मामले मे यह अधिक महत्व की हो सकती है।

मानसिक लक्षणों में जातिगत विभिन्नताएँ

शारीरिक लक्षणों के कारण जातियो मे भिन्नता की समस्या पर वैज्ञानिक ढंग से विचार पिछले १०० सालो में काफी विकसित हुआ है। अब यह बात तय-सी है कि इस दिशा मे खोज का काम एक खास तरीके से होना चाहिए। एक खास तरह के प्रमाणो का जमा करना जरूरी है। जो सामग्री जमा हो उसके उपयोग के तरीके निश्चित से है। इस दिशा मे प्रगति इसी बात पर निर्भर होगी कि और ज्यादा प्रमाण जमा हों ताकि खोज का दायरा और बढे और अन्तरिम रूप से जो निष्कर्ष निकाल लिए गए है वे पुष्ट हो। यह बात तो साफ जाहिर है कि शारीरिक और मानसिक लक्षणो के कारण जातियो मे भेद की जो समस्या है वह बहुत अशो में समान है। लेकिन दोनों हालतो मे कुछ परिस्थितियो मे भिन्नता है, क्योकि जिस कोटि के प्रमाणों से उनका सम्बन्ध है उनकी प्रकृति भिन्न है।

वैज्ञानिक विचार के युग से पहले जो स्थिति थी पहले उस पर विचार करना चाहिए। जब कभी भी एक जाति समूह के लोगो को अन्य समूह के लोगों के बारे मे जानकारी प्राप्त हुई होगी वे लोग तत्काल ही एक दूसरे के शारीरिक और मानसिक लक्षणो की भिन्नता को पहचान गये होगे। उन दिनों मनोगठन का निर्णय केवल रीति-रिवाजो और व्यवहार ही से हो सकता था। और जब कभी ऐसी दो जातियो मे सम्पर्क हुआ होगा जो स्पष्टत सभ्यता के भिन्न स्तर की हों, तो अधिक सभ्य जाति के लोगों को यह विश्वास करने का प्रोत्साहन मिला कि जगली लोग उनसे भिन्न प्रकार के हैं। शारीरिक लक्षणो के वर्णन की भाँति ही मानसिक लक्षणो के बारे मे भी आदिम जातियो के पुराने साहित्यिक वर्णन मे और हाल ही के पर्यटको के वर्णन मे जातियो की विभिन्नता की अतिरजना मिलती है। लेकिन ज्यो-ज्यो जानकारी बढती गई त्यो-त्यों पहले की सर्वमान्य बातो का असाधारणपन कम होता गया। इस तथ्य को अधिकाधिक मान्यता मिलती गई कि अधिकतम पिछडी जातियो मे भी एक सामाजिक व्यवस्था होती है।

दोनो तरह के साहित्यिक प्रमाणो मे भी यह एक समानता थी कि समूहो का वर्णन प्ररूपो की तरह किया गया था जिसमे किसी समुदाय की शरीर और मस्तिष्क की दृष्टि से ऐसे चर्चा की गयी थी मानो वह एक ही व्यक्ति हो। समूहो के लोगो के वैयक्तिक भेदो की या तो बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाती थी या उनका केवल किम्बदन्ती के रूप मे अथवा ऐसे ही किसी असमुचित रूप से उल्लेख भर

कर दिया जाता था। यह तो केवल हाल मे इस तथ्य को कुछ मान्यता मिली है कि समूहो के अपने आन्तरिक प्रभेदो का काफी ज्ञान हुए बिना विभिन्न समूहो के मध्य आधारभूत भेदो का ठीक-ठीक अनुमान हो ही नही सकता है। इस सम्बन्ध मे शारीरिक और मानसिक विशेषताओ की परिस्थितियो के महत्वपूर्ण अन्तर को मान्यता देना अत्यन्तावश्यक है।

जातीय वर्गीकरण मे जिन परिवर्तनीय शारीरिक लक्षणो का उपयोग किया जाता है वे आवश्यक रूप से व्यक्तिगत प्रकार के होते है और व्यक्तियो मे उनका प्रक्रम भौतिक रूप से निर्धारित और स्थायी होता है। आदर्श लक्षण वे है जो जिन्दगी भर टिकाऊ रहते है (जैसे रुधिर समूह होते है) हालाँकि इस प्रकार के अधिकाश लक्षणों के जिन अभिलेखो का प्रयोग किया जाता है वे प्रौढावस्था ही से सम्बद्ध होते है। और कुछ लक्षण ऐसे होते है जो कुछ हद तक वाह्य परिस्थितियो से प्रभावित हो सकते है। इस श्रेणी के शारीरिक लक्षणो पर सामाजिक परिस्थितियो का कोई सीधा असर नही पडता। मानसिक लक्षणों के मामले में परिस्थिति बिल्कुल भिन्न होती है। उनके बाह्य प्रदर्शन ही से वे प्रमाण जुटते है जिनकी व्याख्या की जरूरत होती है। यह स्पष्ट है कि इन मानसिक लक्षणो का निर्धारण अनुभव और जीवन की अनपेक्षित परिस्थितियो के आधार पर होता है। मनुष्यो मे अनुकरण की और सहानुभूति की वृत्ति होती है और अधिकाश मे उसके व्यवहार का अपने समाज के व्यवहार के अनुरूप होना आवश्यक है। कई बातो मे सामाजिक परिस्थितियाँ उसके व्यवहार पर छायी रहती है।

इन परिस्थितियो के कारण समूह मे एकरूपता की जो प्रवृत्ति होती है उसके साथ-साथ व्यक्तिगत विभिन्नता भी होती है, क्योकि मनुष्य को प्राप्त प्राकृतिक देनो और उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियो मे अन्तर होता है। उद्देश्य यह है कि इन व्यक्तिगत विशेषताओ का मूल्याकन किया जाय। और, यह तभी हो सकता है जब हम उन सामाजिक परिस्थितियो का भी उचित ध्यान रखे जिनका अपरिवर्तनीय प्रभाव पडता है। अगर, जरूरी हो तो, भौतिक परिस्थितियो के अपरिवर्तनीय प्रभाव को भी ध्यान मे रखे। इस सम्बन्ध मे शरीर की अपेक्षा मन के अध्ययन मे परिस्थिति अधिक जटिल हो जाती है। और यह भी पहले ही समझ लेना चाहिए कि मन के मामले मे किसी सन्तोषजनक निष्कर्ष पर पहुँचना अधिक कठिन है। दूसरी अन्य परिस्थितियो के कारण भी 'मानसिक' समस्याओ पर विचार करना 'शारीरिक' समस्याओ पर विचार की अपेक्षा अधिक कठिन है। संभ्रमकारी व्यवहार, जिसकी व्याख्या करना सदैव कठिन होता है और भौतिक जगत मे जिसके कुछ पहलुओ का ठीक-ठीक शब्दों मे वर्णन किया जा सकता है, व्यतिरेक करना आवश्यक है।

फिर भी ऐसा लगता है कि जिन मनोवैज्ञानिको ने इस विषय पर विचार किया है वे इस बात पर प्राय. एकमत है कि मानसिक प्रवृत्ति मे जातिगत भेदों की समस्या पर उसी ढंग से विचार होना चाहिए जिस ढंग से शारीरिक लक्षणों की समस्या पर विचार होता आया है। प्रोफेसर क्लिनबर्ग अपनी पुस्तिका **'जाति और मनोविज्ञान'** मे इसी दृष्टिकोण को मान कर चले है। तात्पर्य यह है कि समस्या पर विचार करने का वैज्ञानिक तरीका ही ऐसी रीति है जिससे महत्व के ऐसे परिणाम निकल सकते है जो केवल साहित्यिक चर्चा द्वारा नही निकल सकते। यह भी महत्व की बात है कि श्री क्यूटालेट, जिन्हे शारीरिक लक्षणो पर विचार का तरीका निश्चित करने का मुख्य श्रेय प्राप्त है उन तरीकों को मानसिक लक्षणो मे लागू नही कर सके। १८७१ मे **'एंथ्रोपोमेट्री'** (मानव-भित्ति) मे मनुष्य की 'नैतिक और बौद्धिक' क्षमता के विषय पर अपने अन्तिम पर्यायलोचन मे उन्होने विवाह, मानसिक अपूर्णता, अपराधी प्रवृत्ति जैसे केवल सामाजिक आँकडो पर विचार किया था। ऐसे प्रमाणो की अपूर्णता और सीमाबद्धता को अच्छी तरह स्वीकार किया गया। जब जातियो के मध्य आधारभूत भेदो को प्रकट करना उद्देश्य हो तब इस प्रकार के प्रमाणो का कोई मूल्य नही होता क्योकि पहली बात अभिलेखो का विषय पर केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। इसके अभिलेखो पर आकस्मिक परिस्थितियो का प्रभाव पड़ता है और तीसरे अभिलेख, सब देशो में एक रूप से एकत्र नही किए जाते।

जातियो के वर्गीकरण मे जिन लक्षणो का मानव शास्त्रियो ने उपयोग किया उनमे से अधिकतर शरीर के आकार से सम्बन्धित है और इन तथाकथित रचनाकारीय लक्षणो में से अधिकतर का अभिनिर्धारण परिमाण और आकार के माप के रूप मे हो सकता है। शरीर की कार्यप्रणाली से सम्बन्धित लक्षणो द्वारा जिस वर्ग का निर्माण होता है उससे यह वर्ग बिल्कुल भिन्न है। कर्म का यदि व्यापकतम अर्थ लिया जाय तो उसका अभिनिर्धारण करने वाले लक्षणों का पुन: दो वर्गों—शारीरिक और मानसिक—मे विभाजन किया जा सकता है। लेकिन ये दोनो एक दूसरे मे मिल जाते है और कुछ गुण ऐसे है जो इन दोनो वर्गों की कोटि में समान रूप से आ जाते है। अगर कोई क्रिया स्पष्टत. शारीरिक अधिक है तो उसे शारीरिक कहते है और अगर स्पष्टत मानसिक है तो उसे मानसिक कहते है। लेकिन कुछ लक्षण ऐसे भी हो सकते है जिनमे दोनो के आवश्यक गुण मौजूद हो। लक्षणों के तीनो वर्गो का क्रम यह हो सकता है —रचना-कारीय, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक। मनुष्य के अस्तित्व का शारीरिक पहलू मापदण्ड के एक सिरे पर तो बहुत ही मुख्य दिखाई देता है और दूसरे सिरे पर बिल्कुल ही नही है या है तो गौण-सा है।

जन-समूहो के दैहिक अभिलेखों का क्रमबद्ध सग्रह उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे शुरू हुआ। सर्वप्रथम शक्ति की परीक्षा की रीतियाँ प्रचलित हुईं। प्रतिक्रिया की अवधि, ज्ञानेन्द्रियो की तीक्ष्णता और श्वासतन्त्र आदि अगो की परीक्षाओं की रीतियो के मानक बाद मे स्थिर किये गये। मूलत. सब रीतियाँ समान थी। एक-न-एक प्रकार की परीक्षा की जाती और फिर किसी भौतिक अनुमान द्वारा उसके परिणाम को माप लिया जाता। इस प्रकार जिन शक्तियो को मापा जाता है वे रचनाकारीय लक्षणों की अपेक्षा बहुत जटिल होती हैं और इनमे से अधिकाश का माप इस बात पर निर्भर करता है कि जिसकी परीक्षा की गयी है वह सहयोग करने के लिए सहर्ष तैयार हो और उससे जो कुछ करने को कहा जाय उसे वह भली प्रकार समझ ले। आदिम जातियो की परीक्षा लेते हुए इस जटिलता का महत्व और भी अधिक बढ जाता है।

जहाँ तक दैहिक परीक्षाओ की जातिगत कसौटी के रूप में उपयुक्तता का सवाल है उनकी अन्य कमियाँ हैं। इन परीक्षाओ के परिणामो पर पित्रागत कारणों और जीवन की परिस्थितियो के सापेक्ष प्रभावो के बारे मे जानकारी की कमी, व्यक्तियो मे प्रेरणा के अतिरिक्त अल्पकालिक परिवर्तन और जीवन भर अवस्था के साथ-साथ होनेवाले परिवर्तन हैं। दैहिक लक्षणो के समूह अभिलेखों की व्याख्या करना उपरोक्त कारणो से विशेष कठिन हो जाता है। मानव-शास्त्री अभी इस प्रकार के प्रमाणो का जातिगत वर्गीकरण करने में उपयोग नही कर पाते हैं। अपेक्षाकृत कम सभ्य जातियो के बारे में प्रामाणिक रीति से सग्रह किये हुए लक्षण सम्बन्धी अभिलेख मिलते भी बहुत कम हैं। इन जातियो के बारे मे जितने अभिलेख उपस्थित (उपलब्ध) हैं उनकी सहायता से इस प्राचीन भ्रम को दूर किया जा चुका है कि विभिन्न समूहो की ज्ञानेन्द्रियो की तीक्ष्णता में अन्तर होता है। एक जमाना था जब यह विश्वास था कि शिकारियो की दृष्टि और श्रवणशक्ति सभ्य लोगो की अपेक्षा अधिक तेज होती है और कहा जाता था कि शिकार मे उनकी निपुणता का यही कारण है। अमरीकी इण्डियनों और अन्य शिकारी जातियो की परीक्षा करने से पता चला है कि उनकी दृष्टि और श्रवण-शक्ति मे शहरी लोगो की तुलना मे कोई स्पष्ट अन्तर नही होता और इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि शिकार में उनकी निपुणता का कारण इन ज्ञानेन्द्रियो की तीक्ष्णता नही बल्कि उनका अनुभव है जिसके कारण वे इन ज्ञानेन्द्रियो का दक्षता के साथ उपयोग करने लगते हैं। इन प्रश्नो के बारे मे प्रेक्षको ने मोटे तौर पर जो राय बना ली हो उसका विश्वास नही किया जा सकता। आवश्यकता है अधिक से अधिक सीधे और सच्चे प्रमाणो की।

दैहिक लक्षणो के अभिलेखों से पता चलता है कि आमतौर पर जातियो के

अन्दर ही काफी विभिन्नता मिलती है और समूहो की विभिन्नता औसत मानो के अन्तर पर निर्भर करती है। औसत मानो का यह अन्तर एक ही समूह के लोगो मे मिलने वाले अन्तर की तुलना मे बहुत थोड़ा होता है। यह स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसी रचनाकारीय या जातिगत वर्गीकरण के लिए उपयोग किये जानेवाले अन्य लक्षणो के बारे मे मिलती है। दुनिया के सब भागो मे रहने वाले लोगो की जानकारी से भी, जो काफी विस्तृत है, यही पता चलता है कि आकृति और क्रिया कलाप मे मूलत हर प्रकार से सब मनुष्य मोटेतौर पर एक समान है। हम सब एक समान है और मानव समाज को उप-समूहो मे विभक्त करने वाले गुणो का उन असख्य गुणो की तुलना मे जो हम सब मे समान रूप मे है, महत्व बहुत कम रह जाता है। यह सामान्यन मनुष्यो की आकृति के सम्बन्ध मे लागू होता है, उनकी दैहिक क्रियाओ के भौतिक तथा उनके मानसिक पहलू (जैसे ज्ञानेन्द्रियो, प्रतिक्षेप क्रियाओ और प्रवृत्तियो) पर लागू होता है।

आमतौर पर यह समझा जाता है कि यही सामान्यन सूक्ष्म मानसिक गुणो पर भी लागू होता है और विभिन्न समूहो मे मानसिक गुणो की मात्रा मे अन्तर हो सकता है, स्वरूप मे नही। प्रोफेसर लिनबर्ग का तो यह दृढ मत है कि एक नीग्रो मे हर प्रकार से एक योरोपियन के बराबर समझ होती है। मानव-शास्त्र के विशिष्ट आधुनिक विद्वानो मे से केवल एक ही ने इस मत पर शका प्रकट की है और उनका नाम है लेवी बुहुल। उनका मत है कि आदिम जाति के लोगो की विचारधारा मे सभ्य विचारधारा से दो अन्तर अवश्य होते है। एक तो उनकी व्यक्तिगत व्यक्तित्व की धारणा पृथक् होती है और दूसरे वे तर्कयुक्त रीति से विचार नही कर पाते। जब तक पारिभाषिक शब्दो की स्पष्ट व्याख्या न की जाए और दोनो दल उनका एक ही अर्थ मे प्रयोग न करे इस विषय की चर्चा मे गडबडी की सम्भावना है। विचार करना है जन्मजात योग्यता और स्वभाव पर न कि परम्परा और सामाजिक वातावरण से उत्पन्न हुए मानसिक गुणो पर।

यह विवादास्पद नही है कि आदिम समाजो मे रहनेवाले लोगो का विचार करने का स्वाभाविक ढग आधुनिक समुदायो मे पलने वाले लोगो से भिन्न होता है हालाँकि आदिम समाज मे भी तर्कयुक्त विचार करने के उदाहरण मिलते है और आधुनिक समाज भी ऐसे विश्वासो से मुक्त नही कहा जा सकता जो युक्ति-सगत नही है। ऐसे समूहो मे मिलने वाले विशेष भेद का प्रमाण उन जातियों के अध्ययन से मिलता है जो कुछ दिन पहले तक सभ्यता के आदिम स्तर पर थी और जो सभ्य समुदायो के साथ जुड गयी है जैसे उत्तरी अमेरिका की नीग्रो जाति। इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि ऐसी परिस्थितियो मे ये लोग विचार का युक्तिसगत ढग अपना लेते है। मानसिक परीक्षणो से प्राप्त प्रमाण भी

इसी धारणा का जोरदार समर्थन करते प्रतीत होते है कि सब मनुष्यो मे मूल मानसिक विशिष्टताएँ समान होती है। इनमे से बहुत-सी इस अर्थ मे परिवर्तनीय है कि विभिन्न व्यक्तियो मे वे विभिन्न मात्रा मे मिलती है।

अन्य लक्षणो मे जातिगत विभिन्नताओ का पता लगाने के लिए जो रीतियाँ अपनायी जाती है उन्ही पर चल कर मानसिक लक्षणो मे जातिगत विभिन्नताओ का भी अध्ययन किया जा सकता है या नही इसका निर्णय उपरोक्त दृष्टिकोण को स्वीकार या अस्वीकार करने के बाद ही किया जा सकता है। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तब तो अध्ययन की लगभग समान रीतियो से ही काम चल जायगा। लक्षणो का एक-एक करके अध्ययन करना होगा और व्यक्तियो मे पाये जाने वाले उनके प्रक्रमो को आँकने की परीक्षाएँ बनानी होगी। उसी तरह से अपने लक्ष्य को ध्यान मे रख कर उसके उपयुक्त लक्षणो को छाँटना आवश्यक होगा और समूहो मे तुलना करने और उसकी व्याख्या करते समय विशेष परिस्थितियो का भी ध्यान रखना होगा। इन सावधानियो के साथ इस रीति का मानसिक लक्षणो मे जातिगत विभिन्नताएँ पता लगाने के लिए उपयोग किया जा सकता है और इसका यह अर्थ हुआ कि यह रीति सर्वश अर्थात् सब जातियो पर और मनुष्यो के सब पहलुओ पर लागू होती है।

इस रीति को अपनाने मे सबसे अधिक कठिनाइया मानसिक लक्षणो के अध्ययन मे आती है और उसका कारण है इन लक्षणो की प्रकृति। सबसे पहली कठिनाई जो नीचे स्तरवाले लक्षणो के अध्ययन मे नही आती वह शुद्ध मानसिक लक्षणो को पहचानने की है। व्यवहार मे यह कठिनाई व्यक्तियो मे इन लक्षणो के प्रक्रम जानने के लिए परीक्षाएँ निकालने मे सामने आती है। प्रायोगिक मनोविज्ञान की इस विषय से सम्बन्धित शाखा वर्तमान शताब्दी के प्रथम शतक तक नही हुई थी। उसके स्थापित होने के बाद सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षाएँ निकाली गयी। इस शाखा की रीतियो का अभी भी विकास हो रहा है। आज कल इस काम के लिए दो प्रकार की परीक्षाएँ प्रचलित है एक तो बुद्धि, विशेष कौशल और योग्यता सम्बन्धी और दूसरी चरित्र और स्वाभाविक विशिष्टताओ सम्बन्धी। कौन-सी परीक्षा विशेष से कौन-सी शक्ति (या शक्तियाँ) आँकी जाती है (या है) यह निर्णय करना अक्सर मुश्किल होता है। इन सब मे इस बात की आवश्यकता होती है कि परीक्षित व्यक्ति एक काम को समझे और फिर अपनी पूरी सामर्थ्य से उसे करे। इस बात के काफी प्रमाण है कि व्यक्तियो मे बुद्धि और कुछ विशेष योग्यताओ के प्रक्रम बनाने मे पित्रागति का काफी हाथ रहता है। लेकिन वाह्य परिस्थितियो और पालन पोषण के ढग से उनमे कितना सुधार हो जाता है यह अभी अनिश्चित है। इसलिए जातिगत विभिन्नता दर्शाने

के लिए लक्षण कितने उपयुक्त है यह कहना कठिन है। व्यक्तित्व और स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओ को बनाने मे पित्रागति का कितना हाथ रहता है इसके बारे मे जानकारी बहुत कम प्रतीत होती है।

प्रोफेसर क्लिनबर्ग ने अपनी पुस्तिका मे विभिन्न जातियो की मुख्यत बाल मालाओ की बुद्धि परीक्षाओ का ब्योरा दिया है। अभिलेख प्राप्त करने और उनकी व्याख्या करने मे आनेवाली कठिनाइयो की भी चर्चा की गयी है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इन परीक्षाओ से जो परिणाम प्राप्त हुए है वे पित्रागति और वाह्य परिस्थितियो की अन्त क्रिया से बनते है और इन दोनो के प्रभाव को पृथक्-पृथक् नही किया जा सकता। जातिगत विभिन्नताएँ दिखाने के लिए यह प्रमाण कितने उपयुक्त है इसका विचार करते समय यह जान लेना भी जरूरी है कि अभी बहुत-सी ऐसी जातियाँ है जिनकी परीक्षाएँ किसी एक रूप रीति से नही ली गयी है। इन अभिलेखो का क्षेत्र शारीरिक लक्षणो के अभिलेखो की तुलना में बहुत सकीर्ण है और इसलिए सम्पूर्ण मानव समाज के बारे मे इनके सहारे कोई सामान्य बनाते समय नियत्रण से काम लेना चाहिए।

यदि मोटेतौर पर देखा जाय तो समूहो मे मानसिक लक्षणो की विभिन्नताएँ भी लगभग वैसी ही है जैसी शारीरिक मापो मे। हर जाति मे निहायत मूर्खों से ले कर अत्यन्त बुद्धिमान लोगो तक हर प्रकार के लोग होते है। इस प्रकार यह पता चलता है कि शारीरिक लक्षणो की ही तरह मानसिक लक्षणो के बारे मे भी लोगों ने जो बिना यह बताये कि किसी जाति के लोगो मे परस्पर किस हद तक विभिन्नता होती है जाति के प्रतिरूप के वर्णन किये है। वे बहुत भ्रामक है। इन दोनों ही प्रकरण के लक्षणो के विस्तरणो से पता चलता है कि अधिकाश लोग अपने समूह के औसत के आस-पास ही होते है और इस मध्यवर्ती बिन्दु से दोनो ही ओर के बाह्य पदो की ओर बढने पर वारवारता उत्तरोत्तर घटती जाती है। बुद्धि परीक्षाओ से जो आँकडे मिलते है उनके विस्तरण का प्रारूपिक आकार भी कद और अन्य शारीरिक मापो के विस्तरण की तरह अभिलम्ब वक्र के आकार-सा ही प्रतीत होता है।

यह ध्यान मे रखते हुए भी कि मानसिक लक्षण इस काम के लिए आदर्श नहीं है इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि इनसे मानसिक जातिगत विभिन्नताओं की मूल प्रकृति का पता चलता है। इनका महत्व अब उससे कही घट गया है जितना पहले प्राय समझा जाता था। शारीरिक मापो की तरह इनसे भी समूहो की विभिन्नताओ का पता ऐसे वर्गीकरणो के जोडो मे तुलना करने से चलता है जिनके प्रकीर्णन काफी बडे हो। जिन जोडो में तुलना की जाती है उनमे से यदि सबके नही तो कम-से-कम अधिकाश के विस्तरण आपस मे एक दूसरे को

काफी अशो तक ढँक लेते है। जहाँ तक अन्दाज लगाया जा सकता है सभी जातियो मे मानसिक लक्षणो की व्यक्तिगत विभिन्नता एक ही क्रम की होती है और विस्तरणो के प्रारूपिक आकार भी शायद एक रूप ही होते है। फिर भी उनकी स्थितियो यानी लक्षणो के औसत मानो मे समूहो की महत्वपूर्ण विभिन्नताएँ मिल सकती है।

जो मानसिक लक्षण किसी प्रकार के सतत अनुमाप द्वारा मापे जा सकते है उनके बारे मे स्थिति बिल्कुल ठीक वैसी ही प्रतीत होती है जैसी जातिगत महत्व के शारीरिक मापो की। यह स्मरणीय है कि शारीरिक लक्षणो से भी उपयुक्त ढंग से चुनी गई जातियो की विभिन्नताएँ सब लक्षणो से समान रूप मे प्रकट नही होती। एक ओर कद का अध्ययन है (चित्र सख्या २ मे चित्रित) जिसमे किसी भी जाति के विस्तरण का विस्तार दुनिया के सब सामान्य आकार के व्यक्तियों के विस्तार का लगभग आधा है। व्यावहरिक रूप मे यह माना जा सकता है कि चरम सीमा वाले विस्तरण एक दूसरे को स्पर्श करते है, लेकिन ढँकते नही। कद की ही तरह जातिगत विभिन्नताओ को सफलता पूर्वक दर्शाने वाला दूसरा शारीरिक माप है सिर सम्बन्धी घाताक। कद जिस हद तक जातिगत विभिन्नताएँ दर्शाता है वैसा किसी जन्मजात मानसिक लक्षण से होता हो इसकी बहुत कम सम्भावना है। जो मानसिक लक्षण जातिगत विभिन्नताओ को स्पष्टतम ढंग से दर्शाते है उनकी स्थिति भी चित्र सख्या ३ मे चित्रित स्थिति जैसी ही होती है। इसे समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि इसमे समूहो मे जातिगत विभिन्नताओं की मात्रा उन समूहो के विस्तरणो की मात्रा से पता चलती है जिसमें ये लक्षण सब जातियो की अपेक्षा चरम रूप मे पाये जाते हो। जातियो के जोडो की अधिकाश तुलनाओ मे उनके विस्तरण शारीरिक लक्षणो की अपेक्षा एक दूसरे को कही अधिक ढक लेते है। यह हो सकता है कि कुछ अन्य जन्मजात मानसिक लक्षणो के बारे में स्थिति एक रेखाचित्र द्वारा अच्छी तरह दर्शायी जा सके जिसमे चित्र सख्या ४ की तरह चरमरूप वाले विस्तरण बहुत सटाकर चित्रित किये गये हों।

मानसिक लक्षणों के जातीय भेद से सम्बन्धित स्थिति का यह जो अस्पष्ट-सार निकाला गया है वह प्रफेसर क्लिनबर्ग की पुस्तका के अन्त मे दिये गये सार से मिलता है। उन्होनें लिखा है 'जहॉ तक हम निर्णय कर सकते है, क्षमताओं की अभिसीमा और पित्रागति योग्यता के विभिन्न स्तरो के प्रस्फुटन की वारवारता लगभग सभी जाति समूहो मे समान है।'

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि जातिगत लक्षणो के रूप मे स्वीकार किये गये सब शारीरिक माप विभिन्न जातियो मे अन्तर व्यक्त करते है। कुछ लक्षण जाति समूहो के अन्तर को अधिक व्यक्त करते है और कुछ कम। सतत विभिन्नता न

प्रकट करने वाले (जैसे रक्त समूह) जातीय महत्व के शारीरिक लक्षणो के मामले मे भी यही स्थिति है और जाति समूहो के विभेद को प्रकट करने मे अनुपयुक्त परिवर्तनीय शारीरिक लक्षणो जैसे शरीर का वजन और दैहिक माप के मामले में भी स्थिति यही है। लक्षणो को उस समय परिवर्तनीय कहा जाता है जब वे किसी विशिष्ट जन-समूह के व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न प्रक्रम से प्रकट हो। साधारण नियम यह है कि सब परिवर्तनीय शारीरिक लक्षण जाति समूहो मे कुछ-न-कुछ विभेद करते है।

दूसरे शब्दो मे, समूहो मे परस्पर विभेद सदैव समूहो के आन्तरिक विभेदो से सम्बन्धित होता है। यह नियम केवल मनुष्यो पर ही नही बल्कि प्राणिमात्र पर लागू होता है। प्राणिवर्ग मे से जिनका अधिक पूर्ण रूप से अन्वेषण हो चुका है, जैसे कुछ पक्षी उनमे एक ही जाति के प्रादेशिक समूहो मे मिलने वाले भेद से की जा सकती है। समूह की विशिष्टताओ मे पूर्ण एकरूपता कम-से-कम परिवर्तनीय लक्षणो के मामले मे तो नही होती। यही मानना होगा कि समूह में अनेकरूपता अनेक प्रतिकारकों की अन्तरक्रिया के कारण होती है, इन प्रतिकारको की अन्त क्रिया के कारण होती है। इन प्रतिकारकों मे से कुछ विशुद्ध अथवा प्रधानत जैविकीय होते है और दूसरे वाह्य परिस्थितियो से सम्बन्धित होते है। मनुष्यो के मामले मे सामाजिक सस्थाओ का, जो एकरूप नही रही है, और ऐतिहासिक दैवयोगो का वर्तमान जातियो के निर्माण मे पर्याप्त हाथ रहा होगा। इन समूहो मे परिवर्तनीय लक्षणो के रूप मे प्रकट कुछ अनेक रूपता की अपेक्षा तो करनी ही होगी, और अनेकरूपता वास्तव मे मिलती भी है।

इस बात का कोई कारण नज़र नही आता कि समूहो के अन्दर और उनमें परस्पर असामजस्य के सम्बन्ध मे जो साधारण नियम है उसे मानसिक और शारीरिक दोनो ही प्रकार के लक्षणो पर लागू क्यो न किया जाए। यदि परिवर्तनीय मानसिक लक्षण सब जातियो के लिए समान रूप से वर्गीकरण दर्शाएँ तो मनुष्य अथवा अन्य किसी जीव के किसी भी शारीरिक लक्षण की तुलना मे यह स्थिति अद्वितीय होगी। इस निष्कर्ष से विमुख रहना असम्भव जान पडता है कि मानसिक लक्षणो में कुछ-न-कुछ जातिगत भेदों की अपेक्षा रखनी ही होगी। वर्तमान प्रमाण इन भेदो को प्रकट करने के लिए सम्भवत पर्याप्त प्रबल और विस्तृत न हों, परन्तु यह अनुमान लगाना होगा कि कुछ-न-कुछ भेद है। इस समय तो यही अनुमान युक्ति-युक्ति होगा कि शारीरिक मापो की अपेक्षा मानसिक कसौटियो के मामले मे समूह की अनेकरूपता कम होती है और मानसिक लक्षणों में जातिगत भेदो का पता चलाने के लिए प्रेक्षण के तरीको मे अधिक परिष्कार की आवश्यकता है।

इस अनुमान पर पहुँचने मे एक मात्र अभिधारणा यह रखी गयी है कि समान अवस्थाओं में समान परिणाम निकलने ही की अपेक्षा की जा सकती है। यह बात किसी पूर्व धारणा पर निर्भर नही कि अभी तक जाति-समूहो के वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त शारीरिक लक्षणों और समूहो की तुलना के लिए प्रयुक्त मानसिक विशिष्टताओ का व्यक्ति मे कोई मेल होता है। प्रो० क्लिनबर्ग ने इस विषय पर विचार किया है। उन्होने इस तथ्य पर टिप्पणी की है कि विस्तृत जाँच के बाद भी सामान्य मनुष्यो मे एक ओर सिर के आकार और परिमाण तथा शरीर के परिमाण और रग और दूसरी ओर बुद्धि और व्यक्तित्व-की विशिष्टताओं मे किसी प्रकार के सम्बन्ध का कोई प्रमाण नही मिला। निष्कर्ष यह निकला कि जाति समूहो मे शारीरिक और सरचनात्मक भेद होने पर यह आवश्यक नहीं कि उनमे वैसे ही मनोगत भेद भी हो। यह शक्य भी है और सम्भाव्य भी कि जातिगत महत्व के कुछ शारीरिक लक्षणो और जातिगत महत्व के कुछ मानसिक लक्षणो मे सम्बन्ध होता है और उपरोक्त शारीरिक लक्षण रचनाकारीय होने की अपेक्षा दैहिक और जीव-रसायनिक होते है। मन और शरीर के लक्षण यदि पूर्णत स्वतन्त्र भी होते तब भी यह अनुमान लगाना युक्तियुक्त होता कि जिन अवस्थाओ के कारण एक वर्ग के समूहो मे परस्पर और इन समूहो मे आन्तरिक असामजस्य होता है उन अवस्थाओ का दूसरे वर्ग पर भी उसी प्रकार का प्रभाव पडने की सम्भावना है।

यदि यह निष्कर्ष स्वीकार कर लिया जाय कि मानसिक लक्षणो मे जातिगत भेदो के अस्तित्व की अभिधारणा आवश्यक है, तब समूहो मे भेदो के रूप मे कही गयी उस बात को याद कर लेना उचित होगा जिस पर शारीरिक मापो के विषय में विचार करते समय टिप्पणी की गयी थी। सतत विभिन्नताएँ प्रकट करने-वाले किसी लक्षण विशेष को यदि ले तो सम्भावना यह है कि दो जातियो के विस्तरण काफी हद तक एक दूसरे को ढँक लेगे। प्रत्येक विस्तरण के विस्तार की तुलना मे औसतो के बीच अन्तर बहुत कम हो सकता है। ऐसा होने पर भी जिन जातियो के सदस्यो मे माप के चरम मान मिलते है उनकी सापेक्ष बारबारता में स्पष्ट अन्तर हो सकता है (जैसा कि चित्र ४ मे अकित किया गया है)। कुछ मानसिक लक्षणो के मामले मे यह अन्तर महत्वपूर्ण हो सकता है। दोनों जातियो मे मूर्ख, साधारण और योग्य व्यक्तियो का अनुपात लगभग बराबर हो सकता है फिर भी असाधारण योग्यता एक समूह मे १००० मे से १ मे हो सकती है और दूसरे समूह मे १०,००० मे से एक मे। असाधारण रूप से योग्य व्यक्तियों का अधिक अनुपात मे होना ऐसा प्रतिकारक हो सकता है जो शताब्दियों अथवा सहस्राब्दियो मे किसी का पलडा भारी कर सके।

समस्या, मानव जातियो की प्रकृतिगत या जातिगत विभिन्नताओ का पता लगाना है। इसमे वे विभिन्नताएँ शामिल नही है जो रहन-सहन की अलग-अलग परिस्थितियो के कारण उत्पन्न होती है। पिछले १०० वर्षो से भी अधिक समय से इस समस्या को हल करने के लिए जो वैज्ञानिक ढग अपनाया गया है उसकी रूपरेखा दी जा चुकी है। प्रारम्भिक काल मे इस समस्या पर जो साहित्यिक चर्चा हुई उससे कोई सतोषजनक निष्कर्ष नही निकला। वैज्ञानिक गवेषणा के लिए यह अच्छा रहता है कि इसको दो क्षेत्रो मे बाँट दिया जाय—शारीरिक और मानसिक। इन दोनो ही क्षेत्रो मे समान ढग अपनाये गये है, लेकिन इनके आधार पर विवेचन बहुत पहले आरम्भ हो चुका था। मानसिक क्षेत्र की अपेक्षा शारीरिक क्षेत्र मे ये ढग अधिक सफल रहे है।

इस सम्बन्ध मे गवेषणा करते समय सबसे पहले उन वैयक्तिक विशेषताओ का जिन्हे लक्षण कहा जाता है, पता लगाया जाता है। ये विशिष्ट उद्देश्य की दृष्टि से उपयुक्त होती हैं। यह जटिल काम है, इसमे कोई कई प्रकार के प्रमाणो पर विचार करना होता है। विशिष्ट उद्देश्य की दृष्टि से कोई लक्षण छाँट लेने के बाद, उस पर अलग से विचार करना होगा, क्योकि प्रत्येक लक्षण से सम्बन्धित परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जातिगत तुलना के लिए शारीरिक लक्षणों को आदर्श कसौटी माना जा सकता है, लेकिन मानसिक लक्षण इसके लिए बिल्कुल उपयुक्त नही होते। किन्तु दोनो प्रकार के लक्षणो मे से कुछ ऐसे चुने जा सकते है जो इस काम के लिए न्यूनाधिक रूप मे उपयुक्त हो और अन्य लक्षणो को इस काम के लिए निश्चित रूप से अनुपयुक्त कहा जा सकता है। कुछ लक्षण ऐसे हैं जिनका विशिष्ट परिस्थितियो मे ही उपयोग हो सकता है, जैसे किसी विशेष अवस्था के लोगो की तुलना मे। प्रत्येक मामले मे यह आवश्यक है कि विभिन्नता सूचक प्रक्रमो की परिभाषा बहुत ही स्पष्ट की जाय जैसे शारीरिक विभिन्नता बताने के लिए मीटर या अन्य किसी नाप का प्रयोग करके बताया जाए और मानसिक विभिन्नता बताने के लिए विशेष रूप से निकाले गए परीक्षणो का प्रयोग करके परिणाम निकाले जाएँ।

इस समस्या के वैज्ञानिक विवेचन के लिए ये आवश्यक बाते है और इस विषय में रुचि रखनेवाले कुछ लोग नही चाहते कि कोई प्रतिबन्ध लगा दिया जाय।

यह बता देना उचित होगा कि गुणो की कोई सूची तैयार करके मनुष्यो को नही समझा जा सकता। उनके जीवन के निचोड का ऐसे व्यवस्थित रूपो मे वर्णन किया जा सकता जिनका वर्गीकरण सम्भव हो। फिलहाल तो यही दिखाई देता है कि व्यवस्थित ढगँ का जिसमे लक्षणो का अलग-अलग विवेचन आवश्यक है, एक ही विकल्प है और वह यह है कि समस्या पर सामान्य रूप से विचार किया जाय हालाँकि इस ढग से निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की आशा नही के बराबर है।

गवेषणा की दूसरी अवस्था मे चुनी हुई जातियो का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगो के चुने हुए लक्षणो के अभिलेख एकत्र करना है। अभिलेख सकलन के बाद बहुत-सी बातो की तुलना करनी होती है और यह निश्चित रूप से साख्यकी का कार्य है। वैज्ञानिक विवेचन मे इसके बाद वर्गीकरण आता है जिसे सामान्य समस्या मे रुचि रखने वाले कुछ लोग पसन्द नही करते। यह ऐसे विवेचन का आवश्यक अग है जिसका कोई शाब्दिक विकल्प नही है। उद्देश्य को सदा दृष्टि में रखना चाहिए। जातियो मे कुछ ढग की तुलना पूर्णत. शाब्दिक रूप में ही की जा सकती है।

उल्लिखित व्यवस्थित ढग का अनुकरण करने पर विभिन्न लक्षणो के वर्गों का जो विवरण प्राप्त होगा वह मनुष्यो के समूहो मे भेद का स्वरूप बतायेगा। अब समस्या रह जाती है कि दो-दो वर्गो मे आपस मे तुलना की जाय। लक्षणो के कई वर्गो की तुलना करके जातिगत विभिन्नताओ के सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इस समय मानसिक लक्षणो की अपेक्षा शारीरिक लक्षणो के सम्बन्ध मे निष्कर्ष अधिक भरोसे से निकाला जा सकता है। शारीरिक लक्षणों के आधार पर जातिगत तुलना करते समय यह कहा जा सकता है कि जब दो समुदायो के शारीरिक लक्षणों की तुलना की जाती है तो उनकी महत्वपूर्ण जातिगत विशेषताओ का पता साधारणत: लग जाता है।

अब तक के निष्कर्ष निश्चित रूप से प्रमाणित हो चुके है। दो जातियों के मनुष्यों के शारीरिक लक्षणो मे भिन्नता होती है। लेकिन क्या यही बात उनके मानसिक लक्षणो के बारे मे भी है—इस प्रश्न का उत्तर अभी निश्चित रूप से नही दिया जा सकता क्योकि मानसिक लक्षणो की व्याख्या करना और उनका आँकना अधिक कठिन है और जातिगत तुलना के लिए अब तक जिन मानसिक लक्षणो का सहारा लिया गया है वे उपयुक्त कसौटी साबित नही हुए। मानसिक लक्षणों के सम्बन्ध में जो नीचे लिखा जा रहा है वह लेखक को अब तक सबसे अधिक निश्चित जँचा है।

मानसिक दृष्टिकोण मे ऐसी जातिगत विभिन्नताओ का होना असम्भव दिखायी देता है जिनके कारण एक जाति के सब मनुष्यो मे दूसरी जाति के सब

मनुष्यो से कोई विशिष्ट भेद दृष्टिगोचर होता हो। यह सम्भव है कि कुछ मानसिक लक्षण निरन्तर बदलते रहते है जिनसे मनुष्यो की कुछ जातियो मे विशिष्ट विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की तुलना विस्तरण द्वारा की जा सकती है और यह सम्भव है कि कम विभिन्नता वाली जातियो के मानसिक लक्षणो मे उतना अन्तर न हो जितना उनके शारीरिक लक्षणो मे। यह धारणा सम्भवत. गलत हो कि कोई परिवर्तनशील मानसिक लक्षण सभी जातियो मे समान रूप से पाये जाते है, क्योकि मनुष्य मे शारीरिक लक्षण और पशुओ मे प्राय सभी लक्षण वर्गो मे समान रूप से परिवर्तनीय नही होते। इनकी परिवर्तन-शीलता मे कुछ-न-कुछ भिन्नता अवश्य रहती है। यह सम्भव है कि जातिगत तुलना करने के उद्देश्य से चुने गये मानसिक लक्षण शारीरिक लक्षणो के समान, जातियो मे अलग-अलग रूप मे विभिन्नताएँ बताते हो।

सामान्य निष्कर्ष यह है कि मानसिक दृष्टिकोण मे जातिगत विभिन्नता होती है यद्यपि इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नही है। इस निष्कर्ष की घोषणा करनेवाले को कि वे कौन से मानसिक लक्षण है और किन जातियो मे उनके आधार पर विभिन्नताएँ मिलती है गलत समझा जाने की आशका है। इस समस्या पर चर्चा के अलग-अलग रुख रहे है। एक ओर तो वे लेखक है जिन्होने यह माना है कि जातिगत विभिन्नताएँ गहन महत्व रखती है। इसके विपरीति वे लेखक है जिनका कहना है कि मनुष्यों की जातियो मे कोई जन्मजात असमानता नही होती। किसी ने यह नही कहा कि ये दोनो ही विचारधाराये गलत है। जातिगत विभिन्नताओ को मान्यता देने वाले को यह आशका रहती है कि कही लोग यह सन्देह न करने लगे कि वह अपनी जाति की श्रेष्ठता प्रमाणित करने का प्रयत्न कर रहा है।

जैसे-जैसे शिक्षित लोग दूसरे देशो के लोगो के बारे मे अधिक परिचित होने लगे तैसे-तैसे शारीरिक और मानसिक विभिन्नताओ के बारे मे प्रचलित धाराणाओ मे धीरे-धीरे सशोधन होने लगा। साधारणत ज्ञान-विज्ञान मे वृद्धि होने के साथ-साथ जातिगत विभिन्नताओ का महत्व घटता दिखायी देने लगा। इस समस्या के आधुनिक विवेचन का झुकाव पहले प्राचीन धाराणाओ मे इसी दिशा मे सशोधन करने की ओर रहा और प्राय यह दिखायी देने लगा कि जातिगत विभिन्नताओ के अस्तित्व का खण्डन ही शायद इस समस्या का अन्तिम रूप हो। किन्तु शारीरिक लक्षणो के सम्बन्ध मे यह निष्कर्ष प्रत्यक्षत गलत है और लेखक लेखक के विचार मे मानसिक लक्षणो के सम्बन्ध मे भी इस निष्कर्ष के ठीक होने की सम्भावना बहुत कम है।

मानसिक लक्षणो की विभिन्नताओ के सम्बन्ध मे कोई निश्चित निष्कर्ष इस समय निकालना उचित नही है। नीग्रो जातियो और योरोप की जातियों की परस्पर तुलना करके प्राय इस विषय पर चर्चा की गयी है। पहले वाली यह विचारधारा छोड दी गयी है कि नीग्रो जातियो मे यूरोपीय जातियो से मानसिक व्यवहार का रूप कुछ भिन्न है। बौद्धिक परीक्षाओ से प्रकट हुआ है कि दोनो वर्गो मे योग्यता-विषयक वास्तविक तत्वो मे बहुत ही कम अन्तर होना चाहिए। वास्तविक जातिगत विशेषताओ के रूप मे विभिन्नताओ की व्याख्या करना अनिश्चित है और यह परिणाम निकालना काल्पनिक ही होगा कि शायद विशेषताएँ है ही नही। हो सकता है कि नीग्रो लोगो मे कुछ योग्यताएँ उत्कृष्ट रूप मे पायी जाये।

दूसरे प्रकार से मानसिक लक्षणो के सम्बन्ध मे स्थिति सम्भवत शारीरिक लक्षणो जैसी ही रहेगी। मुख्य जातियो मे शारीरिक लक्षण समान रूप से नही मिलते। एक वर्ग में दूसरे वर्ग की अपेक्षा कोई लक्षण प्रमुख रूप मे मौजूद हो सकते है और बहुत सी बातो मे सभी वर्ग समान हो सकते है। जब सभी वर्गो पर एक साथ विचार किया जाता है तो उनमे लक्षणो की विभिन्नताएँ बहुत कम रह जाती है। यदि सभी जातियो को अपनी अपनी विशेषताओ का विकास करने का अवसर मिले तो ये विभिन्नताएँ मानव के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है।